Chapter-3

तृतीय अध्याय

"सन् १९७० ई. के परीवर्ती उपन्यासों में निहित आक्रोश एवं विद्रोह की विभिन्न मनःस्थितियाँ"

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के उपन्यासों में आक्रोश एवं विद्रोह की भावना प्रचुर मात्रा में दिखाई पडती है। आक्रोश एवं विद्रोह को हम इस अध्याय में निम्न मन:स्थितियों में विभाजित कर अध्ययन करेगें–

(३.१) आक्रोश की विभिन्न मन:स्थितियाँ

(३.१.१) धार्मिक आक्रोश

(३.१.२) मध्यवर्ग का आक्रोश

(३.१.३) ग्रामीण आक्रोश

(३.१.४) दलित वर्ग का आक्रोश

(३.१.५) नवयुवक आक्रोश

(३.२) विद्रोह की विभिन्न मन:स्थितियाँ

(३.२.१) सामाजिक विद्रोह

(३.२.२) आर्थिक विद्रोह

(३.२.३) पारिवारिक विद्रोह

(३.२.४) राजनीतिक विद्रोह

(३.२.५) मानसिक विद्रोह

(३.२.६) नारी विद्रोह

(३.२.७) ऐतिहासिक विद्रोह

(३.२.८) आधुनिक विद्रोह

३.१ आक्रोश की विभिन्न मन:स्थितियाँ

३.१.१ धार्मिक आक्रोश

धार्मिक आक्रोश का सबसे अच्छा उदाहरण एवं वर्णन हमें 'भीष्म साहनी' द्वारा रचित उपन्यास *'तमस'* में देखने को मिलता है। उपन्यास की उत्कर्ष रचना हेतू, इस उपन्यास को साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। यह उपन्यास गाँव की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें पंजाब प्रान्त में हुए धर्मों के तनाव एव परिणामस्वरूप उत्पन्न क्रूरताओं को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में अधिकांश सामान्य व दलित वर्ग, अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों से परेशान है। उच्च वर्ग एव उँचें महकमें के अधिकारी, अंग्रेजों के साथ मिलकर साधारण जनता को परेशान करते हैं। परंतु अत्याचार सहते हुए आम जन समुदाय तंग आकर आक्रोश और गुस्से से भर उठती है और अन्त में समाज के उन ठेकेदारों के प्रति डटकर खडी हो जाती है। उपन्यास में आक्रोश बहुत सुदृढ तरीके से रखा गया है। उदाहरण स्वरूप पंक्तियाँ जैसे

> **"ओ बादशाहों यह क्या जुल्म करने लगे हो? एक छत की मुँडेर के पीछे खडा रँगी हुई दाढीवाला कोई बुजुर्ग बोला, इधर बीमारी फेंक जाओगे तो उठवायेगा कौन? नाली में पडा रहने देते तो कम से कम एक जगह पर बना तो रहता। अब इसके जगह-जगह ढेर लगा जाओगे। पहले से भी ज्यादा गन्दगी फेला जाओगे..।"** *(तमस, पृ. ५१)*

उक्त पंक्तियाँ उपन्यास के पात्रों कश्मीरीलाल और शंकर के विरूद्ध आक्रोश के स्वर है। उपन्यास में कश्मीरीलाल और शंकर अपने काम करने वालों के साथ गाँव की नालियाँ साफ करने आए हैं, किन्तु एक वृद्ध व्यक्ति को यह अच्छा नहीं लगा। क्योंकि विभिन्न राजनैतिक दलों के नेतागण चुनाव प्रसार के समय ऐसे काम करने वहाँ आते हैं और सत्ता प्राप्ति के पश्चात् अपनी सूरत भी नही दिखाते हैं। वृद्ध ने उनसे कहा, कि आप लोग नाली से तो कीचड निकाल रहे हो, किन्तु बाहर जो ढेर लगा कर जाओगें, वह अनेकों बीमारियाँ पैदा करेगा। अत: वह जैसा है, उसे वैसे ही रहने देने में समझदारी है। वृद्ध के भावों का तात्पर्य है, कि वे लोग असली कार्य, गन्दगी तो साफ नहीं कर रहें है, वरन् उसे ओर अधिक फैला रहे हैं। साथ ही जनता की दृष्टि में अपना सफाई अभियान करके चुनाव प्रसार कर रहे हैं। इसी कारण बुजुर्ग व्यक्ति में

उनके खिलाफ आक्रोश का स्वर फुट पडा और वे बोल उठे। इस आक्रोश के पश्चात् कश्मीरीलाल और शंकर अपने साथी बक्शीजी के साथ नालिया सफाई कर रहे थे, तभी वहाँ दो-तीन पत्थर आकर गिरे। सभी ने भय-वश वहाँ से प्रस्थान का निर्णय ले लिया। इस समय उन्होंने देखा, कि लोग आपस में टोलियाँ बनाकर उन्हें ताक रहे हैं। बाद में उन्हे पता चला, कि आगे मस्जिद की सीढियों पर किसी ने एक सुअर मार कर फेंक दिया। इसी के पश्चात् उपन्यास में आक्रोश, मुख्यतः धार्मिक आक्रोश दिखाया गया है। इस घटना को मुस्लिम समुदाय, हिन्दुओं की शरारत मानता है और हिन्दू समाज मुस्लिमों की शरारत मानता है। उपन्यास में इसे निम्न तरीके से चित्रित किया गया है।

> **"मस्जिद की सीढी पर कोई काली-काली चीज पडी है, कोई आदमी सुअर मार कर फैंक गया है। बक्शीजी ने मेहता के चेहरे की ओर देखा, मानो कह रहे हो, देखा? मैनें कहा था ना, कोई गडबड है। सभी ने घूमकर उस ओर देखा, मस्जिद की सीढी पर एक काले रंग का बोरा-सा रखा नजर आया जिसमें दो टांगे बाहर की ओर निकली हुई थी। मस्जिद का हरे रंग का दरवाजा बंद था।"** *(तमस, पृ. ५६)*

> **"लोट चलो, यहीं से लोट चलो, मास्टर रामदास ने धीरे से कहा। आँख थू कश्मीरीलाल ने सूअर की ओर देखकर कहा, और मुँह फेर लिया। बक्शीजी, यहाँ से लोट चलें। आगे मुसलमानों का मुहल्ला है। रामदास ने फिर कहा। वहाँ पर मस्जिद की सीढियों पर मरा हुआ सूअर देखकर बक्शीजी और मेहताजी व मास्टर रामदास भी वहाँ से लौट जाने के लिए कहते हैं। क्योंकि इससे आगे वह जाना भी नहीं चाहते, ये सभी हिन्दू है और मुस्लिम इलाका है, अतः सूअर की घटना के बाद पता नही हिन्दू-मुस्लिम झगडे भडक जाए। इसी डर से वह सब चले जाना चाहते हैं।"** *(तमस, पृ. ५६)*

कुछ समय पश्चात् साम्प्रदायिक दंगो ने अपना भयंकर रूप धारण कर लिया। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही धर्मो के मध्य विवाद उत्पन्न हो चुका था। वानप्रस्थी जी हिन्दुओं को एकत्र कर उन्हें समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं और समझाते हुए कहते हैं, कि जामा मस्जिद में मुस्लिम समुदाय के लोगों ने लाठियाँ, भाले व तरह-तरह का असला बहुत दिनों से इकट्ठा किया जा रहा

है। हमें भी अपनी सुरक्षा हेतू कुछ अच्छे प्रबन्ध करने चाहिए। यही विचार करते हुए वानप्रस्थीजी सबसे कह रहे है, कि –

"सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिये। सभी सदस्य अपने-अपने घरों में एक-एक कनस्तर कडवे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें। उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अंगारे छत पर से फेंके जा सकते हैं।" *(तमस, पृ.६२)*

अतः इस उदाहरण में हमें उपन्यास के पात्र वानप्रस्थीजी यह समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं, कि हमें भी दंगों का सामना करने हेतू अपने घरों में उनसे निपटने के लिए उचित सामान अधिक मात्रा में रखना चाहिए। अतः इस प्रकार दोनों ही तरफ से दंगो को भडकाने हेतू असला एकत्रित किया जा रहा है। इस मामले को शान्त करने की बजाय उसे ओर अधिक तूल दिया जा रहा है। हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही एक-दूसरे के दुश्मन बने हुए है। अंग्रेजी शासन की चालाकी इन दोनों ही धर्मो के लोगों को समझ में नहीं आ रहीं है। विदेशी शासन व्यवस्था 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति पर चल रहे थे और ये दोनों समुदाय आपस में लड कर मर रहे थे। इसी आपा-धापी में कुछ लोग तो मन्दिर में एकत्र होकर प्रधानजी का सुझाव सुन रहे हैं, तो कुछ आपस में कानाफूसी कर रहे हैं। समीति में से एक युवक ने उठकर कहा कि वह चाहता है, कि उनके बच्चों को भी लाठी, नोजा और तलवार सभी कुछ चलाना सिखाया जाये, ताकि समय पडनें पर वह स्वयं की रक्षा कर सकें। सबने मिलकर यह निर्णय लिया, कि अभी इस मसले के हल हेतू हमें यहाँ के डिप्टी कमीश्नर से जाकर मिलना चाहिए। कुछ लोग समझते हैं, कि कांग्रेसियों ने ही मुसलमानों को अपने सिर पर चढा रखा है। तभी एक ने कहा, कि तुम लोग अलग से सिक्खों से जाकर मिलो और बताओ की मुसलमान क्या कर रहे हैं। इसी गहमागहमी में एक सिक्ख कुछ इस प्रकार से कह रहे हैं –

"शरारत तो बहुत बढ रही है इसमें तो शक नहीं।"

"एक सिख सज्जन बोले, सुना है एक गाय भी काटी गयी है। भाई सत्तो की धर्मशाला के बाहर उसके अंग फैकें गये हैं मैं नहीं जानता कहाँ तक यह खबर ठीक है लेकिन सुनने में जरूर आया है।" *(तमस, पृ. ६४)*

'तमस' के इस उदाहरण में उपन्यास के कुछ सिक्ख पात्र सुनी–सुनायी बात कह रहे हैं, कि एक गाय भी काटी गई है और उसे काट कर अपना प्रतिशोध लेने हेतू मुसलमानों ने उसे भाई सत्तो की धर्मशाला के बाहर फिकवाया है। इस उपन्यास में कुछ लोग ऐसे है, जो साम्प्रदायिक धार्मिक झगडे का मूल कारण है और उन्हीं की वजह से समस्त शहर बेहाल स्थिति में जीवन जी रहा है। जिस तरह हिन्दुओं द्वारा सुअर मारे जाने की खबर पाकर मुस्लिमों ने गाय वध कर डाला। दोनों ही अवस्था में बेचारे बेजूबान जानवर बलि चढ गए। गौ–वध की बात सुनकर हिन्दुओं के प्रमुख वानप्रस्थीजी को अत्यधिक गुस्सा आया और उन्होंने कहा, कि अगर उन्होंने गाय की हत्या की है, तो यहाँ खून की नदियाँ बह जायेगी। इस समय मन्त्रीजी भी बहुत आवेशित मुद्रा में दिखाई पड रहे थे। अतः धार्मिक आक्रोश के तहत खून के बदले खून की चाह दोनों तरफ से बन गई थी। दोनों ही तरफ लोग एक–दूसरे को मरने एवं मारने के लिए तत्पर जान पडते थे। दोनों ही धर्मो के लोगों की आँखों में एक–दूसरे के प्रति विद्रोह ही दिखाई देता था। हिन्दू व मुस्लिम दोनों के बीच आक्रोश की तीव्रता छाने लगी और शनैः–शनैः दो मुहल्लों के बीच एक धर्म की दिवार सी बन गई। जिसमें एक तरफ हिन्दू तो दूसरी तरफ मुस्लिम लोगों का आक्रोश था। हिन्दुओं के मौहल्ले में मुस्लिम लोग जाने की हिम्मत नहीं करते, तो दूसरी तरफ मुस्लिम मौहल्ले में हिन्दुओं के जाने की हिम्मत नहीं होती थी। इस धार्मिक आक्रोश के चलते दोनों ही धर्मो के लोगों में आपस में भाईचारे के बदले विद्रोह की भावना पनप उठी। इस धार्मिक आक्रोश मे पूरा शहर बन्द सा हो जाता है। व्यापारियों का व्यापार पूरी तरह ठप्प हो जाता है। बच्चों का स्कूल व कॉलेज सभी बन्द पडे हैं। पूरा शहर धमाको से गूँज उठा। सभी लोग इससे हताहत हुए है। घरों में कितने समय से चूल्हा नहीं जला। शाहनवाज़ खान मोटर से चलकर मौलादाद के पास आता है और वहाँ के हालात के बारे में पूछता है–

> **"खबर क्या है खान जी, उधर पिछले मुहल्ले मे काफिरों ने एक गरीब मुसलमान को मार डाला है। यह कहते हुए मौलादाद के होठों पर आक्रोश उभरकर दिखाई पडने लगा। अब इस साम्प्रदायिक दंगों में इन्सान ही दूसरे इन्सान को मजहब के नाम से मारने लगा है ।"** *(तमस, पृ. १२९)*

सभी हिन्दू-मुस्लिम ऐसे नहीं थे, बल्कि शाहनवाज़ और रघुनाथ दोनों बहुत अच्छे दोस्त थे। दोनों दोस्त एक दूसरे से कह रहे है कि -

"बहुत गडबड है, दिल को बडा दुख होता है, भाई-भाई का गला काट रहा है। धार्मिकता में जकड कर आज हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई कहलाने वाले स्वयं ही एक-दूसरे को मार काट रहे हैं।" *(तमस, पृ. १३१)*

"स्थिति में पहले से कही अधिक उग्रता आ गई थी। शहर की सडके सूनी पडी थी न कोई दुकान खुली थी, न कही कोई टाँगा-मोटर चल रही थी। अगर किसी दुकान के किवाड खुले हो तो समझ लो लूट ली गयी है। अगर लाठियाँ लिये कुछ लोग खडे हो तो समझ लो उन्हीं के सम्प्रदाय के लोगों का वह मुहल्ला है और जहाँ वे खडे हैं, वहाँ से दूसरे सम्प्रदाय के लोगों का मुहल्ला शुरू हो जाता है। पर सभी मुहल्लें यो बटें हुए नही थे। सडक के किनारे-किनारे के पक्के दो मंजीला मकान हिन्दुओं के, पीछे गलियों में कच्चे मकान मुसलमानों के, या देवदत की शब्दावली में सडको पर खुलनेवाले मकान मध्यमवर्ग के, गलियो में खुलने वाले मकान निम्नवर्ग के।" *(तमस, पृ. १४०)*

धार्मिक दंगाइयों के आक्रोश के कारण सभी सडकें खाली पडी हुई थी, वहाँ न कोई व्यक्ति था न ही कोई मोटर गाडी चला रहा था। वहाँ के व्यवसाय भी लूट लिए गए थे। अत: जब भी कभी ऐसे मंजर देखने को मिले हैं, उसका निष्कर्ष अच्छा नहीं होता है। हिन्दू-मुस्लिम का यह विवाद आखिर विभाजन को जन्म देता है।

"एक हिन्दू उस तरफ कब्रिस्तान मे मरा पडा है। कहते हुए ठिगने कद के आदमी ने मुमुलाकर कहा तुम बडा मुसलमानों के हक में बोलते थे अब उनसे जाकर कहो हमारी लाश दे जाये, अपनी उठा ले जाये।" *(तमस, पृ. १४१)*

इसमें भी धार्मिक आक्रोश दिखाई पडता है। किसी व्यक्ति की साधारण सी तरफदारी भी इस धार्मिक आक्रोश के कारण विशेष रूप में दिखाई दे रही थी। हमारा भारत देश अनेक धर्मों, जातियों और मिली-जुली संस्कृतियों का देश रहा है। यहाँ वैसे तो विभिन्न सम्प्रदाय रहते हैं, किन्तु संख्या के अनुसार हिन्दुओं का बाहुल्य है, इनके पश्चात् मुस्लिम सम्प्रदाय का स्थान

है। कुछ ऐसे ऐतिहासिक कारण शुरू से चले आ रहे हैं, जिसके कारण हिन्दू व मुस्लिम दोनों में हमेशा टकराव ही देखने को मिलता है। कई वर्षो से दोनों के एक साथ रहने से एक मिली-जुली संस्कृति का भी विकास होता रहा, किन्तु मुस्लिम लोग अपनी आक्रमक धार्मिकता और हिन्दू अपनी कटुता धार्मिकता के कारण कभी भी एक नहीं हो पाए। कुछ राजनीतिक नेताओं ने सत्ता के लालच मे इन दोनों को कभी एक होने नही दिया, बल्कि हमेशा दोनों में लडाने की स्थिति पैदा करते रहे हैं। सत्ता के लोभियों ने अपने लाभवश इन दोनों में आक्रोश भर दिया, जिसका आखिरी नतीजा टकराव ही है। इन दोनों सम्प्रदाय के टकराव ने विभाजन का रूप लिया और एक मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान का निर्माण हो गया। जब नया भारतीय संविधान शुरू हुआ, तो भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र बना दिया गया। ऐसा होने के पश्चात् भी यह साम्प्रदायिक समस्या आज भी किसी ना किसी रूप मे मौजूद है। न पहले कभी इसका अन्त हुआ था, ना ही आगे होता हुआ दिखाई पडता है। आजादी के बाद अनेकों उपन्यास इस समस्या से ओतप्रोत है। ऐसे धार्मिक दंगो से अनेकों जानें चली गई है, अनेकों बेघर हुए है, स्त्रियों व बच्चों पर अमानवीय अत्याचार हुआ है।'भीष्म साहनी' इस अमानवीय अत्याचार व दिल दहला देने वाले अनुभवों के योगी है। जो एक इन्सान की इन्सानियत को ढक लेता है और उसे हैवान बना देता है। 'तमस' में इन्हीं स्थितियों व कारणों का विश्लेषण किया है। इसमें इस बात पर ज्यादा जोर दिया गया है, कि ब्रिटिश शासन और उसके पिट्ठुओं का इन दंगों के पीछे विशेष हाथ था। इसका बहुत उत्तम उदाहरण निम्न पंक्तियों में है-

> **"ओ कुछ समझो मीरदाद ने हाथ झटककर कहां ,अगर हिन्दू-मुसलमान सिख मिल जाते हैं, उनमें इतहाद हो जाता है, तो अंग्रेज की हालत कमजोर पड जाएगी । अगर हम आपस में लडते रहते हैं तो उसकी हालत मजबूत बनी रहती है ।"**
> *(तमस, पृ. १८१)*

इस प्रसंग मे मीरदाद कुछ बैठे लोगों को यह समझाने का प्रयास कर रहा है, कि तुम लोग सभी आपस में एक-दूसरे पर आवेशित हो रहे हो, असली मास्टर तो इस खेल का तुम हिन्दू-मुस्लिम नहीं हो, बल्कि कोई ओर है। अंग्रेज ही ऐसे सत्ताधारी है, जिसने अपनी सत्ता को बचाने के लिए आज 'फूट डालो राज करो' की नियति अपना रहा है। क्योंकि उसे यह भय हो रहा है, कि अगर हिन्दू, मुस्लिम और सिख तीनों मिल जाएगें, तो बहुत बडी ताकत बन जाएगें। इस एकता को तोडना आसन काम नहीं है, अत: अंग्रेज अब खुश है, कि हम सब आपस में

आक्रोशित होकर लड रहे हैं और लडते रहेगें तथा वह फायदा उठाते रहेगें। *'तमस'* में दंगा फसाद हुआ, किन्तु इस आक्रोश मे हिन्दू–मुस्लिम नेता आहत नहीं होते हैं। आहत होनें वालो का एक ही मजहब है, आम आदमी जिनका नाम अलग–अलग है, जिनको हिन्दू–मुस्लिम में बाँटना सही नहीं है। *'तमस'* में आहत होने वाला मजदूर कश्मीरी हतो है, गली–गली दूध बेचनेवाला मियां होता है, बुढा हरभजन सिंह है, इकबाल सिंह है और सैदपुर जैसे गाँव के लोग है, जहाँ ज्यादातर पुरूष मारे जाते हैं और स्त्रियाँ अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद जाती है। *'तमस'* में यह परिणाम धार्मिक आक्रोश को परिचित कराता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हुए धार्मिक दंगों में हिन्दू व मुस्लिम जीवन पर गहरा असर हुआ, जिसका अंकन 'राही मासूम रजा' ने भी अपने उपन्यासों में किया है। *'ओस की बूँद'* (१९७०) उपन्यास में 'राही मासूम रजा' ने उस मानसिकता का चित्रण किया है, ज़ब इन्सान–इन्सान न रहकर हिन्दू या मुसलमान बन जाता है। हिन्दू व मुस्लिम बनने के बाद वह मुल्लाओं–महन्तों तथा सत्ता लोभियों द्वारा फैलाए गए धार्मिक आक्रोश को व सारी मानवीय संवेदनाओं को छोडकर एक वहशी का रूप धारण कर लेता है। इनके बीच में कुछ पात्र ऐसे भी होते हैं, जो हिन्दू या मुस्लिम ना होकर सिर्फ इन्सान होते हैं। इसी आशा की किरण को 'राही मासूम रजा' ने *'ओस की बूँद'* उपयास में अंकित किया है।

'राही मासूम रजा' के एक और उपन्यास *'दिल एक सादा कागज़'* (१९७३) में भी उन्होंने इसी धार्मिक आक्रोश को उभारने की कोशिश की है। विभाजन के समय मुसलमान की यह सोच थी, कि भारत में उसकी इज्जत आबरू सुरक्षित नहीं है, अत: दूसरे देश पाकिस्तान को बसा लिया। वहाँ जाकर लगा, कि उन्हें आजीविका के अच्छे साधन प्राप्त होंगे तथा सम्मानपूर्ण जीवन जीने को मिलेगा। किन्तु कुछ वर्षो पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश मे बदल गया। इसके बाद भी बहुत से मुस्लिम अपनी सम्पति, आबरू एवं सामाजिक जिन्दगी खोकर शरणार्थी का जीवन जी रहे हैं। *'दिल एक सादा कागज़'* में 'राही मासूम रजा' ने मुसलमानों के इसी मोह भंग की कहानी को मार्मिक रूप से प्रकट किया है।

'मंजूर एहतेशाम' ने भी धार्मिक आक्रोश पर एक उपन्यास *'सूखा बरगद'* (१९८६) की रचना की है। इस उपन्यास में भी देश विभाजन के पश्चात् सभी मुस्लिम मनोंभावों को गहरी संवेदनशीलता और विचारशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। हमारे देश में मजहब किस

प्रकार आदमी–आदमी के सामाजिक सम्बन्धों में दरार पैदा करता रहा है, इसी का वर्णन 'सूखा बरगद' उपन्यास में किया गया है। इसके एक पात्र अब्दुल वहीद खाँ अर्थात अन्नू भी है, जो घर जाने के पश्चात् वह धार्मिक आक्रोश की भावना के लिए एक चुनौती छोड जाता है। अब्दुल वहीद खाँ एक ऐसा इन्सान है, जो धार्मिक संकीर्णताओं से अलग है, उदारवाद और मजहब पर इन्सान को तरजीह देने वाला है। उसे अपनी जिन्दगी भर कट्टरपंथियों से जूझना पडता है, किन्तु सामाजिक व आर्थिक दबावो के सामने वह घुटने नही टेकता। वह धार्मिक विद्वेष रहित समाज की स्थापना करना चाहता था, किन्तु उसका यह स्वप्न उसकी लाख–कोशिशों के बावजूद पूरा नहीं हो पाता है।

'नासिरा शर्मा' भी एक ऐसी उपन्यासकारा हैं, जिसने इस साम्प्रदायिकता को अपना विषय बनाया है। उनके उपन्यास *'ठीकरे की मँगनी'* (१९८९) में मुस्लिम परिवार की अन्दर की जिन्दगी, उसके रीतिरिवाज, सामाजिक समस्याओं के प्रति आक्रोश का चित्रण किया गया है। यह उपन्यास एक मुस्लिम समाज के रीतिरिवाज से ओत प्रोत है, जैसा की नाम से ही प्रतीत होता है। इसमें जन्म लेते ही किसी लडकी की सगाई किसी लडके के साथ कर दी जाती है, इस लडकी का नाम महरूख है, जो उपन्यास की केन्द्रीय पात्र है। जिसके जीवन के २५ वर्ष इसी रूढी की छाँव मे व्यतीत हो जाते हैं। इसके बाद उसका मँगेतर उसे धोखा देकर चला जाता है। फिर भी महरूख टूटती नहीं, बल्कि स्वयं के लिए एक नाम व स्वतन्त्र रास्ता चुनती है। वह एक छोटे से गांव के लोगों की सहायता व सेवा को अपना लक्ष्य बना लेती है। इस उपन्यास में एक धर्म विशेष के प्रति आक्रोश दिखाई देता है।

'द्रोणवीर कोहली' ने भी धार्मिक आक्रोश को लेकर उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यास *'हवेलियों वाले'* (१९३०), *'आँगन कोठा'* (१९८५), *'चौखट'* (१९८१) आदि उपन्यासों में साम्प्रदायिकता का वर्णन किया है। ये सभी उपन्यास व उपन्यासकार के अनुभव क्षेत्र, पश्चिमोत्तर पंजाब की जिन्दगी से जुडे हुए है। इन उपन्यासों में अंकित गाँवों की जनसंख्या में बहुत से किसान तो मुस्लिम है और कुछ मात्रा साहूकार हिन्दू है, इनका किसानों की जमीन पर भी अवैद्य रूप से अधिकार है। अतः इन साहूकारों द्वारा किसानों का शोषण किया जाता है। किसानों के इस शोषण और उनके आपसी संघर्षो का उपन्यासकार ने विश्वसनीय अंकन किया है। इसमें आर्थिक दृष्टि से अगर देखे, तो मध्यम वर्ग बहुत विशेष है। वे विचारों में सामान्य दृष्टिकोण रखते हैं, अक्खड है, मरने–मारने के लिए हरदम तैयार रहते हैं। पंजाबियों का

व्यक्तित्व उपन्यास में अच्छी तरह से उभरता हुआ दिखाई पडता है। वैसे तो हिन्दू साहूकार लोग मुस्लिम किसानों का शोषण करते हैं, धार्मिक आक्रोश भी है, परन्तु सामाजिक व आर्थिक स्तर पर एक सन्तुलन बना हुआ है। अतः धर्मो को लेकर तनाव सदियों पुराना चला आ रहा है। जनता इसको लेकर काफी आक्रोशित हुई है। उपन्यासकारों ने भी इसका वर्णन अपने उपन्यासों में किया है।

३.१.२ मध्यवर्ग का आक्रोश

बसावट की दृष्टि से अगर देखे, तो हमारे देश की आबादी का अधिकांश हिस्सा कस्बौं, शहरों, नगरों में रहता है। इनमें अधिकांश लोग मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। आय के रूप से, नौकरी पेशे में, सामाजिक व राजनीतिक अधिकार आदि में यह मध्यवर्ग रीढ की हड्डी है। यह मध्यवर्ग कस्बौं से लेकर महानगरों तक अपने विविध रूपो में अनेक उलझी हुई विशेषताओं के साथ मौजूद है। समय-समय पर यह उलझन आक्रोश के रूप में दिखाई देता है। भारत में इस वर्ग का उदय और विस्तार अगर देखें, तो उपनिवेशिक शासन के साथ शुरू हुआ था। इसके पश्चात् तो उपन्यास का प्रारम्भ ही मध्यम वर्ग का प्रारम्भ माना जाने लगा है। 'प्रेमचन्द' के उपन्यासों में भी हमें इस वर्ग का आक्रोश देखने को मिलता है।

नगरों व कस्बौं को लेकर लिखे जाने वाले सभी उपन्यासों में मध्य वर्ग का आक्रोश किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। मध्यवर्ग के उपन्यासकारों में 'चन्द्रकान्ता', 'राजेन्द्र यादव', 'श्रीलाल शुक्ल', 'रामदरश मिश्र', 'मोहन राकेश', 'कमलेश्वर', 'भीष्म साहनी', 'कृष्णा सोबती', 'देवेश ठाकुर', 'गिरिराज किशोर', 'योगेश गुप्त', 'उपेन्द्रनाथ अश्क' आदि प्रमुख है। 'उपेन्द्रनाथ अश्क' के अधिकतर उपन्यासों में मध्यवर्गीय आक्रोश दिखाई देता है। उनके उपन्यासों में शहरी या कस्बाई मध्यवर्ग के जीवन के संघर्ष का अंकन किया गया है। निम्न व मध्यवर्ग के संघर्ष, इस वर्ग के युवकों की इच्छाओं, सपनों और नैतिक मूल्यों से उपजी कुंठाओं, पुरानी पीढी से उनके संघर्ष आदि इन उपन्यासों में विशेष रूप से दर्शाया गया है। 'अश्क जी' के सभी मध्यवर्गीय उपन्यासों में निराशा, भटकाव, प्रेम के क्षेत्र में असफलता, वैवाहिक जीवन में उत्पन्न हुई कटुता तथा भारतीय समाज द्वारा तय की गई लक्ष्मण रेखाओं के अन्दर घुटती व सिसकती औरतों की परिस्थितियों एव उनके आक्रोश का अंकन देखने को मिलता है।

'चन्द्रकान्ता' का *'ऐलान गली जिन्दा है'* (१९८४) उपन्यास में भी हमे मध्यवर्ग आक्रोश की झलक देखने को मिलती है। जैसे कि –

"सास स्वभाव से ही क्रोधी थी। उसने क्या किया। उठाके कती हुई पूनियाँ दे मारी, खिडकी के बाहर, सामने ताल में। लल्ली को दुःख हुआ। कितना तो मन

लगाकर, कमर दुहरी कर, लगी थी वह सूत कातने में? पर क्या करती? सास के सामने मुँह थोडे खोल सकती थी? भारी मन से सो गई। सुबह नींद से उठी तो मालूम है क्या देखा?'' *(ऐलान गली जिन्दा है, पृ. ७३)*

इसमें हमें मध्यवर्ग का आक्रोश देखने को मिलता है। इसमें लच्छी काकी अपने अवतारे को कह रही है, कि लल्ली की सासू माँ बडी ही गुस्से वाली थी। लल्ली ने इतनी मेहनतकश करके सूत काता था, किन्तु उसने सभी खिडकी के बाहर फेंक दिया। वह बेचारी चुपचाप रह गई, करती भी तो क्या करती। 'चन्द्रकान्ता' के इस उपन्यास में मध्यवर्ग के और पढे-लिखे लोगों की आर्थिक समस्याओं, उनके रूढिगत संस्कारों, उच्चवर्ग से ग्रहण किए गए झूठें मूल्यों का चित्रण उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य है। उपन्यास के कथा विषय में गली-मुहल्लों में रहने वाले मध्यमवर्गीय परिवारों की ही कहानी है। इसमें एक तरफ तो रूढियों और अन्धविश्वासों से ग्रस्त मध्यमवर्गीय पुरानी पीढी है, तो दूसरी ओर उसके विरोध में खडी युवा पीढी भी है। संस्कृति के नाम पर चल रहे रीतिरिवाज़ों के पाखण्ड, झूठी शान और आडम्बर से ग्रस्त मध्यमवर्ग की विवशता से भरे आक्रोश को दिखाया गया है।

''यह पगला कोई पढा-लिखा लडका लगता है। इतिहास और दर्शन की जानकारी रखता है। इसके घर-बार के बारे में जानना होगा। पुलिस को इतला दे। महीप सिंह ने सुझाव दिया। नहीं पुलिस को नहीं। बेचारा किसी का कुछ बिगाडता नहीं। बेकार ले जाकर पागलखाने में डाल देंगे। ऐसा करते हैं, एक सर्क्युलर निकालेंगे, पगले का पूरा हवाला देकर, हो सकता है इसके माँ-बाप या किसी नाते-रिश्तेदार को पता चले और वह इसे लेने आ जाएँ। सर्क्युलर को पास-पडोस के गाँव में भी पहुँचाना होगा। मुहल्लों में तो अपने छोकरे ही जा सकेंगे। दूर दराज गाँवों में डाक से भेज देंगे।'' *(ऐलान गली जिन्दा है, पृ. ९६)*

इसमें दयाराम मास्टरजी अपने दोस्तों के सामने भूता का प्रसंग उठाते हैं, भूता कहीं से उनके यहाँ आ गया था। किसी को नही पता था, कि भूता कौन है। वह पागलों जैसी बातें किया करता था और स्वयं को कभी हीरो तो कभी ब्रिटेन से आया हुआ रसेल बताता है। दयाराम के साथी उसे पुलिस को सौंपने को कहते हैं, किन्तु दयाराम उन्हें मना कर देता है और कहता है, कि भूता पढा-लिखा लडका मालूम होता है। महीप सिंह जब उसे पुलिस को देने की बात कहता है,

तो दयाराम पुलिस की तरफ आक्रोशित भाव में मना करता है। उसके अनुसार इससे भूता को नुकसान होगा। इसके लिए सर्क्युलर निकाल कर सभी को बताने से शायद उसके परिवार जन का कुछ पता लग सकता है। इसमे साधारण वर्ग का पुलिस के प्रति आक्रोश दिखाई देता है।

> **"लेकिन भारत तो अपना देश है न? लगता था, लोका किसी भी तर्क से सहमत होने को राजी नहीं है, दरअसल हमारी हालत खानाबदोशों की सी हो गई है। आजादी के वक्त देश के विभाजन में पाकिस्तान बनते समय जो लोग बेघर हो गए उन पर तो कम-से-कम तरस ही खाया जाता है, लेकिन हम पर तो रोब ही बरसाया जाता है। हर साल ढेर-ढेर इन्जीनियर, डाक्टर डिग्रियाँ लेकर निकलते हैं, पर घाटी में कितनों को काम मिल सकता है? नौकरियों के लिए तो हमें देश-विदेश में भटकना ही पडता है न ? "** *(ऐलान गली जिन्दा है, पृ. १५१)*

इसमें अवतारा, लोका व तेजा सभी इस भारत की व्यवस्था पर आक्रोश प्रकट कर रहे हैं। लोका बंगलौर में एच.एम.टी. में इन्जीनियर है। किन्तु उसने अपने एक इन्टरव्यू के वाकिए को दोस्तो को बताया है, कि किस तरह मुझे अपने ही देश में अपमानजनक प्रश्नों का सामना करना पडा। उसने बताया, कि उसे एक इन्टरव्यू में कहा गया, कि तुम कश्मीरवासी हो, तुम लोगों ने स्वयं को जब अपने से अलग कर लिया है, तो तुम यह उम्मीद कैसे कर सकते हो, कि तुम्हे भारत के किसी भी भाग में अच्छी नौकरियाँ मिलेगी। ऐसा सोचकर वह आक्रोशित होता है और कहता है, कि उनकी हालत तो इधर-उधर घूमनेवालों जैसी हो गई है। हम इधर के भी न रहे ना ही सीमा पार के रहे। जब इस देश का बँटवारा हुआ तो जो लोग बेघर थे, उन पर तो तरस खाया गया, किन्तु हम पर तो गुस्सा बरसाया जाता है। अत: इसमें मध्यवर्ग का सरकारी व्यवस्था के प्रति आक्रोश दिखाई देता है।

'अमृत लाल नागरजी' का *'करवट'* (१९८५) उपन्यास भी मध्यवर्गीय आक्रोश से जुडा हुआ है। *'करवट'* के साथ-साथ उनका एक अन्य उपन्यास *'पीढियाँ'* (१९९०) में भी मध्यवर्गीय आक्रोश की झलक देखने को मिलती है। *'करवट'*उपन्यास में उस मध्यवर्ग के उदय का अंकन किया गया है, जो सर्वप्रथम अंग्रेजी हुकूमत का स्वागत करता है। उसे अपनी आर्थिक उन्नति का साधन बनाता है, पर वह ऐसा ज्यादा दिन तक नहीं कर पाता है। जल्दी ही उसका अंग्रेजी शासन से मोहभंग हो जाता है। इतना सब होने के बाद मध्यम वर्ग आक्रोशित होकर देश

को आजादी दिलाने हेतू उठ खडे हुए । *'करवट'* और *'पीढियाँ'* दोनों ही भारतीय मध्यवर्ग के विकास और सामाजिक बदलाव की प्रेरणा के रूप में अच्छा अंकन मिलता है। *'करवट'* उपन्यास में एक खत्री परिवार की तीन पीढियों की कहानी है। जिसमे लाला मुसद्दीलाल, उनके पुत्र बंशीधर टंडन और पौत्र देशदीपक टंडन से जुडी हुई कहानी है। 'नागरजी' का प्रमुख उद्देश्य मध्यवर्ग से जुडी व उस समय में हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का इतिहास प्रस्तुत करना है। अंग्रेजी शासन के आगमन से मध्यवर्ग में आक्रोश की लहर तेजी से फैलती चली गई। उन्होंने साथ ही साथ भारतीय समाज के रहन-सहन का ढंग व सोच में आए हुए परिवर्तन का बडा ही अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। अवध पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन स्थापित होने के बाद आर्थिक लूट का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ और उससे मध्यवर्ग के लोग बडे ही आहत हुए, उसका वर्णन बडा ही सजीव सा जान पडता है। 'नागर जी' ने इस उपन्यास में उत्तर भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार, धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन व मध्यवर्गीय सामाजिक मूल्यों में होने वाले परिवर्तन का भी चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र वंशीधर टंडन को अन्त में ऐसा महसूस होने लगता है, कि अभी हमें ब्रिटिश शासन से टक्कर लेनी ही होगी। वंशीधर टंडन के डॉक्टर पुत्र देशदीपक टंडन जो अपने पिता से अधिक प्रगतिशील और आधुनिक है, उसके माध्यम से नवयुवक वर्ग का अंग्रेजों के प्रति आक्रोश सामने आता है। कुल मिलाकर *'करवट'* उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है, जो भारत में सामन्ती व्यवस्था के अवशेषों पर उत्पन्न होते ब्रिटिश उपनिवेशवाद के गन्दे चेहरे के उद्घाटन, भारतीय मध्यवर्ग के विकास और नयी चेतना को सामाजिक बदलाव के रूप में स्वीकार करने वाला ऐतिहासिक दस्तावेज है।

*'पीढियाँ'*उपन्यास में*'करवट'* के ही अगले चरण को प्रस्तुत किया गया है। इसमें डॉ देशदीपक टंडन के पुत्र जयन्त टंडन व उसके भी पुत्र सुमन्त टंडन का वर्णन किया गया है। सुमन्त टंडन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनता है और उसका पुत्र युधिष्ठिर टंडन लखनऊ के एक समाचार पत्र इवनिंग स्टार में पत्रकार का कार्य करता है। इसमें भी तीनों पीढियों के माध्यम से 'नागर जी' ने मध्यवर्ग के आक्रोश को दिखलाने की कोशिश की है।

'अमृतलाल नागर' के पश्चात् 'कमलेश्वर' ने भी मध्यवर्गीय जीवन के आक्रोश को अपना विषय बनाया। उनके उपन्यास *'काली आँधी'* (१९७४), *'आगामी अतीत'* (१९७०),

'तीसरा आदमी' (१९७६), *'वही बात'* (१९८०) आदि उपन्यासों में 'कमलेश्वर जी' ने मध्यवर्गीय जीवन की विरोधाभासपूर्ण स्थितियों व जटिलताओं और भटकाव का ही चित्रण किया है। इसमें बताया गया है, कि मध्यम वर्गीय समाज आधुनिकता की दौड में किस प्रकार अपने आप को खोता हुआ जी रहा है। एक मध्यवर्गीय स्त्री अगर राजनीति की दलदल में कदम रख लेती है, तो उसे किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पडता है। मध्यवर्गीय औरत के सामने क्या-क्या चुनौतिया आती है, उसका वर्णन हमें 'कमलेश्वर जी' के उपन्यासों में देखने को मिलता है।

'भीष्म साहनी' का उपन्यास *'कडियाँ'* (१९७०) में भी मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है । जिसके पात्र आक्रोश की स्थिति में हमेशा एक दूसरे को हीन भावना से देखते हुए नजर आते हैं। इसमें रूढि तथा संस्कारों से व्याप्त ईर्ष्या व आशंका का अंकन बडी ही सजीवता से किया गया है। *'कडियाँ'* उपन्यास का मुख्य कथ्य वैवाहिक सम्बन्धों में उत्पन्न हुई दरारे और उस स्त्री की असहाय स्थिति का अंकन मिलता है। मध्यमवर्गीय नैतिकता किस तरह पति-पत्नी के सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न कर देती है। आर्थिक दृष्टि से नारी के असहाय होने के कारण स्त्री को अनेकों प्रकार की यातनाएँ झेलनी पडती है। उसी का अंकन करना 'भीष्म साहनी' का प्रमुख उद्देश्य है ।

'हृद्येश' के उपन्यास *'सफेद घोडा काला सवार'* (१९७१), *'साँड'* (१९८१), *'पुनर्जन्म'* (१९८५) आदि उपन्यासों में कस्बों में रहनेवाले मध्यवर्गीय समाज के जीवन में पडे संस्कारों और नैतिक मूल्यों का चित्रण किया है। *'सफेद घोडा काला सवार'* उपन्यास में अदालतों में फैले भ्रष्टाचार और उनमें मिलने वाले न्याय के नाटक पर तीखा आक्रोश व्यक्त किया है। अर्थात् आजकल एक मध्यवर्गीय परिवार अगर अदालत में न्याय की उम्मीद लेकर जाता है, तो उसे अदालत का न्याय नाटक के समान प्रतीत होता है और उसे अदालत पर बिल्कुल भरोसा नहीं है। 'हृद्येश जी' ने *'साँड'* में शिक्षण संस्थाओं जैसे स्कुल, कॉलेजों में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण करते हैं। इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र साहू सीताराम ने धर्म और जन कल्याण के नाम पर कस्बें में एक साँड छोड रखा है, जो सरे बाजार आतंक व उत्पात मचाए रहता है। ऐसा करने के बावजूद कोई भी उसे पकड नहीं सकता है, पकडना तो दूर कोई उसे छू तक नहीं सकता है, क्योंकि वह साहू जी का साँड है। अतः इसी प्रकार उन्होंने लोक सेवा से प्रेरित होकर शिक्षण संस्थाए भी खोल रखी हैं, किन्तु उनके भी अधिकारी खुले साँड ही है, जो

आस-पास के लोगों का जीवन जीना मुश्किल किए रहते हैं। साँड को अराजकता और धार्मिक पाखण्ड का प्रतीक बताया गया है। मध्यवर्गीय समाज इससे खासा परेशान रहता है। उपन्यास के अन्त में साँड की हत्या दिखाकर उपन्यासकार ने अधर्म पर धर्म की विजय का संकेत दिया है। कुल मिलाकर अगर हम देखे तो, 'हृद्येश जी' के उपन्यासों में आजादी के बारे मध्यवर्गीय जीवन में पनपी मूल्यहीनता संघर्ष व आक्रोश की मानसिकता का चित्रण ही प्रमुख है।

'ममता कालिया' भी एक ऐसी उपन्यासकार है, जिन्होंने मध्यम वर्ग पर अपनी लेखनी चलाई है। उनके उपन्यास *'बेघर'* (१९७१) में मध्यवर्गीय संस्कारों और मूल्यों की मार सहन करती नारी की नियति का चित्रण किया है। परम्परागत धार्मिक-नैतिक संहिताओं के चलते मध्यवर्गीय वैवाहिक जीवन के नरक बन जाने की सच्चाई का अंकन इस उपन्यास में किया गया है। इसने नारी संहिता के बडे ही क्रूर विरोधाभास को प्रस्तुत किया गया है। जो भी स्त्री जाने-अन जाने में नारी संहिता के नियम का उल्लंधन करती है, उसे पुरूष समाज का कोपभाजन बनना पडता है। स्त्री को अपने भोग की वस्तु समझने वाला पुरूष इस बात को कतई, बर्दाश्त नहीं कर पाता की उसकी पत्नी के शादी पूर्व किसी पुरूष से अनेतिक सम्बन्ध हो। 'ममता मालिया' के ही एक दूसरे उपन्यास *'नरक दर नरक'* (१९७५) में भी मध्यवर्गीय समाज का वर्णन किया गया है। इसमें मौजूदा सामाजिक व्यवस्था का चित्र पाठक के सामने प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मध्यवर्गीय पढे-लिखे नवयुवकों को अपनी समस्त प्रतिभा ईमानदारी, मेहनत और प्रथम श्रेणी की डिग्रियों के बावजूद रोजगार अर्थात् काम की तलाश में दर-बदर भटकना पडता है। लेखिका ने बम्बई के शैक्षणिक वातावरण में फैले हुए शिक्षकों और अधिकारियों भी गुटबन्दी, भ्रष्टाचार आदि का अंकन किया है। वहाँ अध्यापक लोग मिलकर बडे अधिकारियों के विरोध में साजिश करते हैं। अतः ऐसी शिक्षा-व्यवस्था के प्रति छात्रों में असन्तोष व आक्रोश का भाव उमड कर सामने आता है।

'अमृता प्रीतम' ने भी *'कोरे कागज'* (१९८२) उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं के प्रति आक्रोश को कथ्य विषय बनाया है। भारतीय ज्ञानपीठ पुरूस्कार प्राप्त लेखिका 'अमृता प्रीतम' का यह सबसे लघु उपन्यास है। *'कोरे कागज'* में एक युवा मन भी कातरता व बैचेनी भी उभर कर सामने आई है। मौसी नाम की उपन्यास पात्र ने पंकज को पाल-पोस कर बडा किया था। वह उसको उन लोगों के बारे में बता रही है जिन्होंने उसे मारने में कोई

कसर नहीं छोडी। रक्खी मौसी उसे जनकों के परिवार से सावधान रहने को कहती हुई कह रही है –

> **"हाय रे, तेरे सिर में काहे को चुभतीं? उसी के सडें सिर में एक दिन चुभेंगी। भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं। तुम देख लेना एक दिन उसका किया उसके सामने आयेगा, उसकी आवारा बेटियाँ ही उसके सिर की सूइयाँ बन जाएँगी।"**
> *(कोरे कागज, पृ. १२६)*

अतः मौसी कहती है, कि उसने बुरा काम किया है। अतः बुरे काम का फल भी बुरा ही होता है, हमने कुछ बुरा नहीं किया, उसी ने बुरा काम किया है, अतः सूइयाँ भी उसी को चुभेंगी। उसकी आवारा पुत्रियाँ ही उसे इस कर्म का फल प्रदान कर देगी। भगवान हमेशा न्याय करते हैं, फिर चाहे उसमें थोडा समय क्यों नहीं लग जाए। अतः इस प्रकार से इसमें मध्यवर्ग का आक्रोश दिखलाई पडता है ।

३.१.३ ग्रामीण आक्रोश

हमारे देश की तकरीबन सत्तर प्रतिशत जनता गाँवों में बसती है। ग्रामवासियों की जीवन शैली बहुत ही साधारण होती है। गाँवो में अधिकतर लोग जिनके पास खेत होते हैं, वे किसान व जिनके पास जमीन नहीं है, वे सभी मजदूरी करके जीवन-यापक करते हैं। अत: गाँव वालों की प्रमुख आजीविका का साधन खेती ही है। आर्थिक दृष्टि से अगर हम देखते हैं, तो किसान बहुत ही गरीब व अन्य सुख-सुविधाओं से भी वंचित होते हैं। गाँवों में शिक्षा, स्वास्थ, यातायात, रोजगार आदि सभी के साधन तो है, पर बहुत ही कम मात्रा में और जो है, वे बहुत ही निचले स्तर के हैं। आजादी के पश्चात गाँवों की जीवन-स्थिति में थोडा बहुत बदलाव अवश्य आया है। गाँव की आबादी का कुछ हिस्सा रोजगार की तलाश में नगरों व महानगरों की तरफ पलायन हो रहा है। गाँवों में आजकल राजनीतिक झटके भी बहुत देखने को मिलते हैं। गाँवों में भी मन्दिर-मस्जिद के झगडें बडा रूप धारण करने लगे हैं। मजदूर व दलित वर्ग अपने अधिकारों मे लिए आक्रोश भरे संघर्ष की और अग्रसर हो रहा है। स्त्रियाँ भी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। जहाँ भी उनके अधिकारों का दमन होता है, वे आक्रोश का रूप धारण कर लेती है। गाँवों की जिन्दगी में धीमी गति से ही सही, किन्तु लगातार बदलाव आ रहा है।

भारत के गाँवों के इस सच का अंकन उपन्यासकारों के साहित्य का प्रमुख विषय रहा है। ग्रामीण आक्रोश को लेकर उपन्यास रचना करने वाले उपन्यासकारों में 'देवेन्द्र सत्यार्थी', 'फणीश्वरनाथ रेणु', 'श्री लाल शुक्ल', 'शैलेश मटियानी', 'बलभद्र ठाकुर', 'राजेन्द्र अवस्थी', 'रामदरश मिश्र', 'राही मासूम रजा', 'विवेकी राय', 'गोविन्द मिश्र', 'जगदीश चन्द्र', 'द्रोणवीर कोहली', 'प्रभा खेतान, 'वीरेन्द्र जैन' और 'मैत्रेयी पुष्पा' आदि प्रमुख है। स्वतंत्रता के बाद इन ग्रामीण अँचलों में जो बदलाव आए, उसे अनेक उपन्यासकारों के अपने उपन्यासों में, उसकी सभी परम्परा और विरासत के साथ पेश किया है ।

'भैरव प्रसाद गुप्त', 'नागार्जुन', 'देवेन्द्र सत्यार्थी' आदि के उपन्यासों में ग्रामीणों की दुखमयी जीवन स्थिति जमींदारों और भूमिपतियों द्वारा उनका शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अन्धविश्वास-ग्रस्तता, जातीयता पारिवारिक झगडें, पुलिस के अत्याचार, स्त्रियों की दुर्दशा आदि का प्रमाणिक चित्रण किया गया है। इनमें कुछ उपन्यासकार मार्क्सवादी विचारधारा से भी प्रभावित है, जिसमे 'भैरव प्रसाद गुप्त', 'नागार्जुन' ने जमींदारों और किसानों के संघर्ष का

अंकन वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के ढाँचें पर किया है। जमींदारों और भूमिपतियों के विरूद्ध किसानों और मजदूरों में उत्पन्न हो रहे आक्रोश की अभिव्यक्ति सभी ग्रामाधारित इन उपन्यासों में हुई है। इसके साथ ही गाँवों को उनकी सम्पूर्णता में पेश करने की प्रवृत्ति भी इस काल के उपन्यासों में दिखाई देती है।

आठवें दशक में जिन उपन्यासकारों ने ग्रामीण अँचलों को अपने कथ्य के रूप में चुना, उनमें 'शैलेश मटियानी', 'रामदरश मिश्र', 'शिवप्रसाद सिंह', 'श्री लाल शुक्ल' आदि प्रमुख है। आजादी मिलने के बाद ग्रामीणों ने अपने सुखमय जीवन का एक सपना देखा था, जो इन उपन्यासकारों ने पूरा किया। ग्रामीण किसानों और मजदूरों ने समझा, कि देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारों का अत्याचार खत्म हो जायेगा। उन्हें भी खेती और रहने के लिए जमीन मिलेगी, अनेक सरकारी कर्मचारी उनकी सेवा के लिए कार्यरत होगें। लेकिन उनका यह स्वप्न अन्ततः टूट गया। अंग्रेजी शासन व जमींदारी प्रथा का तो समापन हो गया, पर किसानों का महाजनों द्वारा शोषण बदलते रूप में भी चलता ही रहा। पुराने जमींदार व महाजन भेष बदलक राजनीति में आ गए और राजनेताओं की कुर्सी पर विराजमान होकर फिर से बदलते समय में बदलते रूप के साथ उनका शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। कृषि, यातायात और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में विकास के बहुत वायदे किए, किन्तु विकास सिर्फ नाममात्र का ही हो पाया। मैदानी हिस्सों में बाढ और सूखा का प्रकोप बना रहा। अतः बेरोजगारी, गरीबी दिनोंदिन बढने लगी। जीविका की तलाश में युवकों ने शहरों की और जाना शुरू कर दिया। गाँवों का पूरा परम्परागत ढाँचा नष्ट हो गया। प्रेम सद्भाव और भाईचारे के मूल्य नष्ट हो गए, पुराने सम्बन्धों में दरार पड गई। 'शैलेश मटियानी' ने अपने उपन्यासों में इन समस्याओं का वर्णन किया है। इन सब विपत्तियों को सहन करते-करते सभी मरने लगे और जगह-जगह संघर्ष का माहौल पैदा हो गया। 'मटियानी जी' ने विशेषतः पहाडी क्षेत्र की स्त्रियों और दलितों की दयनीय स्थिति पर आक्रोश का चित्रण किया है। इस पुरूष प्रधान व्यवस्था में नारी के अमानवीय अत्याचार का काफी करूण चित्र 'मटियानी जी' ने प्रस्तुत किया है। 'शैलेश मटियानी' के उपन्यास *'सर्पगन्धा'* (१९७९) में भी उनका कथ्य विषय पर्वतीय क्षेत्र का दलित समाज है। जो अपने अधिकार की लडाई लड रहा है ।

'श्री लाल शुक्ल' ने भी अपने उपन्यासों में प्रमुखतः *'राग दरबारी'* (१९६८) में ग्रामीण आक्रोश का वर्णन किया है। *'राग दरबारी'* में आजादी के पश्चात कस्बों का रूप ले रहे गाँवों

की जीवन-स्थितियों व शिक्षालयों के दूषित हो रहे वातावरण व कचहरियों में फैले भ्रष्टाचार का व्यंग्यपूर्ण शैली में अंकन किया है। *'राग दरबारी'* उपन्यास में शिक्षा प्रणाली में नकल किस प्रकार चलने लगी है, उसका एक उदाहरण यहाँ पर देखिए –

> **''तब वकीलों ने लंगड को समझाया। बोले कि नकल बाबू भी घर-गिरिस्तीदार आदमी है। लडकियाँ ब्याहनी है। इसलिए रेट-बढा दिया है। मान जाओं और पाँच रूपये दे दो। पर वह भी ऐंठ गया। बोला कि अब यही होता है। तनख्वाह तो दारू-कलिया पर खर्च करते हैं और लडकियाँ ब्याहने के लिए घूस लेते हैं। नकल बाबू बिगड गया। गुर्राकर बोला की जाओ हम इसी बात पर घूस नहीं लेंगे। जो कुछ करना होगा, कायदे से करेंगे। वकीलों ने बहुत समझाया कि ऐसी बात न करो लंगड भगत आदमी है, उसकी बात का बुरा न मानो, पर उसका गुस्सा एक बार चढा तो फिर नहीं उतरा।''** *(राग दरबारी, पृ. ३७)*

इसमें बताया गया है, कि किस तरह शिक्षा भी एक भ्रष्टाचार की दुकान बन गयी है। यहाँ पर नकल मरवाने के लिए नकल बाबू नियुक्त का रखा है, जो नकल करवाने हेतू सभी से रूपये ऐंठता है। वकील लोग उसके साथी है। लंगड भी उनसे नकल हेतू बात करने आता है, किन्तु नकल बाबू की बातों पर उसे आक्रोश व द्वेष भर आता है और कहता है, कि अपनी सारी सरकारी कमाई की तो दारू पी जाता है और जब बेटी के विवाह की बात आती है, तो हमसे पैसे लेने की बात करता है। इस पर नकल बाबू लंगड से नाराज हो जाते हैं और **'उसे जो करना है वही करेंगे'** कहकर चुप हो जाता है। सभी उसे बहुत समझाते हैं, किन्तु वह नहीं मानता। इससे पता चलता है, कि कोई हिम्मत करके इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति आवाज उठता है, तो उसको भी उसकी कीमत चुकानी पडती है, उदाहरण के तौर पर लंगड को चुकानी पडती है।

इसमें खन्ना मास्टर ने कुछ कहना चाहा, किन्तु वहीं पर गयादीन ने उसे बीच में ही रोक कर कुछ इस प्रकार कहा –

> **''और यहाँ गाँव में क्या है? कोई मोटर से कुचल जाए तो मोटरवाला रफूचक्कर हो जाएगा। कुचला हुआ आदमी कुत्ते की तरह पडा रहेगा। अगर कहीं अस्पताल हुआ तो दो-चार दिन में मरते-मरते पँहुच जाएगा। अस्पताल में अगर कोई डॉक्टर हुआ भी तो पानी की बोतल पकडाकर कहेगा कि लो भाई, राम का नाम लेकर पी**

जाओ। राम का नाम तो लेंगे ही क्योंकि उनके पास देने के लिए दवा ही नहीं होगी, होगी भी तो, चुराकर बेचने के लिए पहले से ही निकालकर रख ली गई होगी। तभी तो कहा कि शहर में हर दिक्कत के आगे एक राह है और देहात में हर राह के आगे एक दिक्कत है।" *(राग दरबारी, पृ. ३०२)*

गयादीन ने उदास होकर गाँव को एक मजबूरी बतायी और कहा, कि गाँव में क्या मिल सकता है। रंगनाथ बाबू से कहा, कि तुम तो शहर से आए हो, तुम्हीं बताओ कहाँ किस प्रकार की व्यवस्था है। खन्ना मास्टरजी कुछ बोलना चाहते थे। किन्तु बीच में ही गयादीन ने कुछ इस प्रकार कहा, कि गाँव में क्या मिलता है। यहाँ अगर कोई मोटर से कुचल जाए, तो कोई भी उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। सब उसे देखकर भागने लगते हैं। कुचलकर मोटरवाला भी पुलिस के डर से भाग जाता है। अगर कोई आस-पास अस्पताल भी हुआ, तो उसके डॉक्टर के पास कोई दवा-दारू नहीं मिलेगी, क्योंकि वह भी तो इस सरकारी भ्रष्टनीति में बराबर का हिस्सेदार है, अतः दवा को बाहर बेच देता है। गयादीन ने अन्त में एक बहुत अच्छी बात कही है, कि शहर में हर मुसीबत के सामने एक हल है, किन्तु गाँव में तो हर रास्ते में एक मुसीबत इन्तजार करती रहती है। अतः हमने अध्ययन किया की 'श्री लाल शुक्ल' ने अपने उपन्यासों में ग्रामीणों के माध्यम ने सरकारी व्यवस्थाओं के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है।

'विवेकी राय' के उपन्यासों में भी ग्रामीण आक्रोश की झलक देखने को मिलती है। इनके उपन्यासों में *'लोकऋण'*(१९७७), *'समर शेष है'*(१९८८) और *'श्वेत पत्र'*(१९७९) आदि में भारत की ग्रामीण संस्कृति के सच्चे स्वरूप को ही नहीं, बल्कि उसके बिखराव का भी वर्णन किया है। *'लोकऋण'*उपन्यास में 'विवेकी राय' ने एक आधुनिक गाँव को कथ्य विषय बनाया है, जो अपने मानवीय मूल्यों पर आधारित परम्पराओं को छोड कर आधुनिक संस्कृति का शिकार हो गया। 'विवेकी राय' का समस्त औपन्यासिक संसार उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र से जुडा हुआ है। जो समस्त क्षेत्र अत्यन्त पिछडा हुआ है व साथ ही साथ एक कृषि प्रधान क्षेत्र है। 'लोकऋण' का गाँव पूर्वांचँल का आधुनिक गाँव है। यहाँ पर चकबन्दी हो चुकी है, बिजली भी आ चुकी है, पढे-लिखे नवयुवक फुटबाल टूर्नामेंट आयोजित करते हैं तथा साथ ही साथ ग्राम पंचायत के चुनाव में जमकर भाषणबाजी भी की जाती है। गाँव के अधिक जमीन वाले किसान अपनी-अपनी ताकत के अनुसार पदाधिकारी को रिश्वत देकर सार्वजनिक उपयोग के स्थल जैसे तालाब, धर्मशाला और पुस्तकालयों को अपने नाम करवा लेते हैं। यहीं नहीं, बल्कि छोटे-छोटे

किसानों की उपजाऊ जमीन भी अपनी जमीन में मिलाने की भरपूर कोशिश करते हैं। इन्हीं सभी झगडों को लेकर आपस में मारपीट व मुकदमें बाजी होती है। अतः इस आपसी टकराव के बाद सद्भावना, प्रेम आदि सभी समाप्त सा हो जाता है। सद्भावना के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थ, झूठ, प्रपंच आदि का बोलबाला अधिक है। मन्दिर मे दीपक नहीं जलते, जबकि वहाँ के घंटो को भी चुरा लिया जाता है। परम्परागत धार्मिक उत्सवों का जो एक उत्साह होता है, वह धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। बाप जहाँ इधर-उधर की मेहनत करके सार्वजनिक स्थानों का निर्माण करवाता है, तो उसी का बेटा तिकडमबाजी व धोखाधडी करके उस सबको अपने चक में मिला लेता है। परम्परागत और आधुनिक पनप रही संस्कृति के बीच की टकराहट का भी *'लोकऋण'* में बहुत सफलता से अंकन किया है। यह ग्रामीण आक्रोश का बडा ही अच्छा उदाहरण है।

'सोना माटी' (१९८३) उपन्यास में भी 'विवेकी राय' ने ग्रामीण अँचल कोही को उपन्यास का विषय बनाया है। इसमें करइल की लहलहाती फसलों की सुन्दरता वहाँ की मिट्टी की चिपकने की विशेषता और सोना उगलने की क्षमता, बाढ के सभी को नाश कर देने के स्वभाव का सजीव वर्णन 'विवेकी राय' ने बडे ही विस्तार से किया है। ग्रामीण लोगों की जिन्दगी में उत्पन्न हुए समकालीन मूल्य संकट का भी चित्रण बडी लगन से किया गया है। पूर्वांचल के बहुत से लोगों की नग्न सच्चाई यह है, कि वे आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी पिछडे हुए, गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन जीने वाले निरक्षर और अज्ञान के तम में डूबें, साथ ही पुराने अंधविश्वासों में जकडे हुए ग्रामीण हैं। यह वह क्षेत्र है, जहाँ भूमिपतियों द्वारा छोटे किसानों और कृषक मजदूरों का अमानवीय शोषण होता है। कभी-कभी समस्त ग्रामीण मिलकर पूँजीपतियों के विरूद्ध आक्रोश में आ जाते हैं। यहाँ पर गाँवों के विकास के लिए शुरू होने वाली सरकारी योजनाएँ, इंजीनियरों और ठेकेदारों की तिजोरी भरने में काम आती है। यहाँ पर शिक्षा संस्थाएँ एक गन्दा मजाक बन कर रह गयी है और राजनीति में चुनाव की अगर हालत देखे, तो लोकतन्त्र का एक विकृत चेहरा ही हमारे सामने आता है। इन सबका सबसे मुख्य चेहरा गाँवों में ही देखने को मिलता है, जहाँ लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था और पूँजीवादी शासन व्यवस्था जुडकर सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कमजोर गाँव वाले का शोषण करते हैं। *'सोना माटी'* का केन्द्रीय पात्र रामस्वरूप बडे ही आश्चर्य के साथ देखता है, कि भूमिपति सामन्त, भ्रष्ट सरकारी अफसर, भ्रष्ट नेता, मूल्यहीन नयी पीढी, अवसरवादी बुद्धिजीवी सभी असहाय जनता के शोषण में बराबर के भागीदार है ।

'समर शेष है' (१९८८) उपन्यास में भी 'विवेकी राय जी' ने *'सोना माटी'* उपन्यास का ही विस्तार दिखाया गया है। *'समर शेष है'* उपन्यास एक आक्रोशित वृत्ति पर आधारित उपन्यास है। इसका कथ्य विषय पूर्वांचँल को ही बनाया गया है। पूर्वांचँल के किसान और मजदूर जो काफी लम्बे अर्से तक शोषण और अन्याय, सहते-सहते अब अन्यायियों के खिलाफ आक्रोश में भरकर संघर्ष की मुद्रा में तनकर खडे हो जाते हैं। इस गाँव में बुद्धिजीवी और क्रान्तिकारियों ने आक्रोश व द्वेष में भरकर भूमिपतियों तथा शोषण करने वालों के खिलाफ व उनकी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष छेड दिया है। उपन्यास में एक कच्ची सडक है, जो पिछडेपन का अच्छा उदाहरण है। इसके प्रमुख पात्र सन्तोषी पंडित, सुराज, रामराज जयन्ती आदि सभी अपने सजीव व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। भारत के आजाद होने पर स्वराज तो मिला किन्तु सुराज नहीं मिला। सुराज तो नेताओं व उनके चमचों को, भूमिपतियों को, ठेकेदारों को, इंजीनियरों को, सरकारी पदाधिकारियों को और उनके परिवारों को ही मिला है। यह सुराज शहरों तक ही सीमित रह गया, गाँवों तक तो पहुँच ही नहीं पाया। यह इसलिए नहीं हो पाया, क्योंकि शहरों को गाँवों से जोडने वाली पक्की सडक अभी तक नहीं बनी है। जनता गरीबी, अशिक्षा और पिछडेपन की शिकार हो गई। किन्तु यह सब कब तक चलता, कब तक भ्रष्टाचार का नंगा नाच होता, किसान जाग उठे और ग्रामीण आक्रोश भडक उठा, सभी संघर्ष के पथ पर चल पडे। इस संघर्ष में सुराज की प्रेमिका जयन्ती भी शामिल हो जाती है। धीरे-धीरे यह संघर्ष व्यापक रूप ले लेता है, इस संघर्ष में एक तरफ तो गाँव के भूमिपति, ग्राम प्रमुख, ब्लाक प्रमुख, इंटर कॉलेज के मैनेजर और प्रिंसिपल तथा दूसरी तरफ आक्रोशित वे लोग है, जिन्होंने डटकर इनका विरोध किया। इसमें सुराज, रामराज, जयन्ती, सन्तोषी मास्टर, किसान जानकीनाथ और इनसे जुडे काफी किसान व मजदूर हैं। सुराज बुद्धिजीवियों के लिए एक आदर्श मिसाल प्रस्तुत करता है और सत्ता के बिछाये गए जाल को अलग-थलग कर देता है। उसकी प्रेमिका जयन्ती भी व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष में शामिल हो जाती है। सुराज समरेश बहादुर के 'जनता आश्रम' में जाकर भ्रष्ट व्यवस्था को भीतर से तोडने का प्रयास करता है और जयन्ती बाहर से आक्रोशित जनता को एकत्र कर जन-आन्दोलन छेड देती है। अत: इस प्रकार हम देखते हैं, कि 'विवेकी राय' के उपन्यासों में ग्रामीण आक्रोश भरपुर मात्रा में देखने को मिलता है।

'मिथिलेश्वर' के उपन्यासों में भी बिहार के भोजपुर अँचल की गरीबी और पिछडेपन के साथ वहाँ चल रहे किसान-मजदूर और उच्च जाति-वर्ग के बीच के संघर्ष का अंकन देखने को

मिलता है। जातीय संघर्ष, अराजकता, हिंसा, अपहरण आदि समस्याओं में लिप्त भोजपुर गाँव का 'मिथिलेश्वर' ने बहुत सजीव चित्रण किया है। १९८० में 'मिथिलेश्वर' का पहला लघु उपन्यास *'झुनिया'* प्रकाशित हुआ। उसके बाद *'युद्धस्थल'* (१९८१) प्रकाशित हुआ। 'मिथिलेश्वर' के अधिकतर उपन्यासों की कहानी बीसवीं शताब्दीं के आस-पास का बिहार का ग्रामीण जीवन है। *'युद्धस्थल'* उपन्यास में 'मिथिलेश्वर जी' ने रामशरण बहू नाम की एक उच्च जाति की स्त्री को केन्द्र में रखकर, उन सभी नारियों की दुखमयी कहानी प्रस्तुत की है, जो अन्धविश्वास ग्रस्त पिछडी मानसिकता के चलते गाँव वालों द्वारा डायन कहकर अपमान, भय व दुख का जीवन व्यतीत करती है।

गाँवों में किसान और जमींदार के रूप में अपनी सभी धार्मिक व सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ जीवन व्यतीत करने वाले मुसलमान समाज का पूरा का पूरा चित्र पेश करने वाले पहले उपन्यासकार 'राही मासूम रजा' हैं। 'राही मासूम रजा' के उपन्यास *'दिल एक सादा कागज़'* १९७९ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें 'राही जी' ने गाँवों में बसने वाले मुसलमानों की समस्याओं को गहरी संवेदना और सच्चाई की पक्की पकड के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवारों की घरेलू जिन्दगी का मार्मिक अंकन हुआ है। 'राही जी' के उपन्यास मुस्लिम पारिवारिक जीवन के प्रमाणिक सबूत बन गए हैं। इसमें मुसलमानों के मोहभंग होने की कहानी है। दोनों सम्प्रदायों के मन में घृणा, डर, अविश्वास फैलाने वाले कारणों की खोज के साथ-साथ उनके बीच मानवता, प्रेम, भाईचारा आदि रिश्तों के खोजने की भी इस उपन्यास में कोशिश की है।

सदी के आठवें दशक में 'जगदीशचन्द्र' ने अपने *'धरती धन न अपना'* (१९७२), *'कभी न छोडें खेत'* (१९७६), *'मुट्ठी भर काँकर'* (१९७६) व *'घास गोदाम'* (१९८५) आदि उपन्यासों में पंजाब की पृष्ठभूमि, वहाँ के दलित वर्ग तथा जाट किसानों की जिन्दगी का अंकन किया है। जाट किसानों की सामन्ती और छोटी-छोटी बातों के लिए आपस में कट-मरने और मुकदमे बाजी में समस्त धन-सम्पति स्वाह कर डालने का पागलपन आदि इनमें देखने को मिलता है। 'जगदीशचन्द्र' ने इन उपन्यासों में पुराने झगडों को सुलझाए रखने की मूर्खतापूर्ण जिद, झूठी शान निभाने की प्रवृति में जाटों की स्थिति का यर्थाथ व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। *'मुट्ठी भर काँकर'* में देश विभाजन के पश्चात् पंजाबी शरणार्थियों के सैलाब के कारण दिल्ली

के आसपास रहने वाले जाट–किसान बेघर हो जाते हैं और अपनी पुरखों की जमीन जायदाद को भी शरणार्थियों के हाथो गंवा बेठते हैं।

'गोविन्द मिश्र' ने जी अपने उपन्यास *'लाल पीली जमीन'* (१९७६) में एक बुन्देलखंड अँचल के खुरदुरे परिवेश का चित्रण किया है। वहाँ के रहने वालों की जीवन स्थिति और उनकी सोच व मानसिकता का चित्रण *'लाल पीली जमीन'* में 'गोविन्द मिश्र' ने किया है। उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य अपनी जानी–पहचानी जमीन के उन अर्थहीन संघर्षो व आक्रोश का चित्रण करना है, जो मुहल्लों और गलियों में स्कूल की ओछी राजनीति और छोटे–छोटे स्वार्थ को लेकर होती है। यही बात बडी संख्या में राजनीति के क्षेत्र में दिखाई पडती है, जहाँ जातीय संघर्ष के मुद्दे के सामने विभाजन के समस्त मुद्दे खत्म हो जाते हैं। किसी बडे उद्देश्य के लिए एकत्रित होकर व्यवस्था से संघर्ष करने का उत्साह किसी में भी नहीं है। सही राजनीति समझ व अच्छी सोच के अभाव में राजनीति हिंसा का पर्याय बनकर रह जाती है, जिसकी अपनी कोई दिशा नहीं होती। अतः कुल मिला कर अगर देखे, तो 'गोविन्द मिश्र' ने इस उपन्यास में एक पिछडे कस्बाई क्षेत्र के सामूहिक जीवन का भयावह चित्र प्रस्तुत किया है।

'हरगुलाल' का उपन्यास *'भीतरा कुआँ'* १९७५ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में हमें ग्रामीण आक्रोश भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। इसका कथ्य विषय उत्तर प्रदेश के बुलन्द शहर के अँचल को लिया गया है। इस उपन्यास में उनके पात्रों के माध्यम से इस अँचल की प्रथाओं, रीति रिवाजों, अन्धविश्वासों आदि का चित्रण करते हुए बदलती गाँव की सोच को भी पेश किया गया है। उपन्यास में दो शक्तियों का वर्णन किया गया है, दोनों ही आक्रोशित है। दोनों का यह संघर्ष बडी ही विश्वसनीयता के साथ अंकन किया गया है। एक वर्ग गाँव के मुखिया और उसके समर्थकां का है, जो ग्राम की स्थिति को बदलना नहीं चाहते, बल्कि जैसा है, वैसा ही रहने देना चाहते हैं, ताकि वह स्वयं निर्धन व असहाय गाँव वालों का शोषण करता रहे। इसके खिलाफ दूसरा वर्ग गाँव में परिवर्तन चाहता है, जिसका संचालन अधिकतर नवयुवक कर रहे हैं। ये सभी मिलकर गाँव के जीवन में आर्थिक–सामाजिक परिवर्तन लाना चाहते हैं। उपन्यासकार के इस दोनों तरफ के आक्रोश भरे संघर्ष में करौरा गाँव की समस्याओं और उन्हें सहन करते पात्रों की दुख–सुख, हँसी–खुशी, आशा–निराशा का सजीवता को साथ पेश किया है। कुछ उपन्यास पात्र जैसे धन्नो, छिद्दा, महाराज और पण्डित रामलाल आदि नये सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने की आशा रखते हुए संघर्ष करते हैं।

अत: आजादी के बाद हिन्दी उपन्यास में भारतीय ग्रामीण जीवन का अंकन काफी मात्रा में देखने को मिलता है। साथ ही गाँव वालों के जीवन का चित्रण अनेक आयामों के साथ जुडा हुआ है। एक विशेष बात यह है, कि सन् १९७० ई. के बाद के उपन्यासों में गाँव का दलित और कमजोर नारी वर्ग अपने अधिकारों और शक्तीकरण की लडाई में आगे की तरफ अग्रसर हो रहा है। 'विवेकी राय', 'मिथिलेश्वर' आदि के उपन्यास इसके प्रमाण है। अत: हमने अध्ययन किया कि गाँवों में शोषण सहन करते-करते अब वे भी आक्रोशित होकर भूमिपतियों के विरूद्ध संघर्ष करने लगे हैं।

३.१.४ दलित वर्ग का आक्रोश

दलित वर्ग सबसे निम्न वर्ग को कहा जाता है। आदिवासियों को भी दलित नाम से ही पुकारा जाता है। हिन्दी साहित्य में 'प्रेमचन्द' से पूर्व दलितों की स्थिति अच्छी नहीं थी। उन्हें अच्छा नहीं समझा जाता था, किन्तु 'प्रेमचन्द' के कथा साहित्य में दलितों के साथ सहानुभूतिपूर्ण अंकन किया हैं। साथ अनेक समकालीन तथा परवर्ती उपन्यासकारों ने भी दलितों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 'भैरवप्रसाद गुप्त' और 'नागार्जुन' ने अपने उपन्यासों में जमींदारों द्वारा दलित वर्ग के पात्रों के आर्थिक और दैहिक शौषण का गहरी सहानुभूति के साथ चित्रण किया है ।

'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' के उपन्यास *'मुर्दाघर'* (१९७४) में मुम्बई महानगर के उस जीवन का अंकन किया गया है, जो सडकों के किनारे, पुलों पर, गटरों, सीलन और सडांध से भरी झोंपडियों में घुट-घुटकर अपना दम तोडती है। जहाँ पर छूत-अछूत अंगों से पीडित आवारा बच्चे व औरतें, भीख माँगने वाले कोढी और लगडें, जूठे खाने पर पलने वाले गरीब असहाय बच्चें, चोर और जुआरी रहते हैं। यह दलित वर्ग एक तरफ तो अपने स्वयं को जिन्दा रखने हेतु भीख, चोरी आदि का सहारा लेते हैं, तो दूसरी और सभ्य समाज के पहरेदार अर्थात् पुलिस के अत्याचारों का बार-बार शिकार बनते रहते हैं। 'दीक्षित जी' ने मुम्बई महानगर की इस घिनौनी जिन्दगी का चित्रण 'मुर्दाघर' में किया है। यहाँ दलित वर्ग का आक्रोश हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। 'दीक्षित जी' के पश्चात् 'जगदीश चन्द्र' के उपन्यास *'धरती धन न अपना'* (१९७२) में भी स्वतन्त्रता से पहले की पंजाब की ग्रामीण पृष्ठभूमि में गहरी संवेदना के साथ दलित आक्रोश की कथा प्रस्तुत की गयी है। इस उपन्यास में 'जगदीश जी' ने दलितों की नाटकीय जीवन स्थितियों का अंकन किया है। उच्चवर्गीय समाज द्वारा दलितों के शोषण और दमन का भी बडा ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार ने सदियों से गुलामी से उत्पन्न दलितों की मानसिकता और हीनता से ग्रस्त चेतना का विश्वसनीयता के साथ चित्रण किया है। कहानी में अगर देखे तो आपसी द्वेष, आपसी फूट और आन्तरिक बिखराव के कारण दलितों की संघर्ष क्षमता ओर ज्यादा आक्रोशित बन पडी है। *'धरती धन न अपना'* उपन्यास में लेखक ने दलितों की सामुहिक शान्ति का भी संकेत दिया है, जिसको अगर सही नेतृत्व मिल जाए, तो वह दलित

वर्ग व सम्पूर्ण समाज को बदलने की क्षमता रखता है। वह इस सम्पूर्ण समाज को बदल सकता है।

'गोपाल उपाध्याय' का *'एक टुकडा इतिहास'* (१९७५) में भी दलित जीवन पर आधारित उपन्यास है। इसमें उपन्यास की केन्द्रीय पात्र चनुली एक ब्राह्मण युवक से शादी करके दलित जाति के शाप से मुक्ति पाना चाहती है, पर उसका यह सपना बस सपना बन कर ही रह जाता है और पूरा नहीं हो पाता है। इसके बावजूद चनुली हार नहीं मानती और दलित आक्रोश का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वह अपनी संघर्ष क्षमता का परिचय देती हुई चन्दा देवी में रूपान्तरित होकर सम्पूर्ण दलित समाज के उत्थान के लिए संघर्ष करती है और सवर्ण समाज को एक बहुत बडी चुनौती भी देती है।

'आशीष सिन्हा' का उपन्यास *'बीता हुआ समय'* १९७८ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी दलित आक्रोश देखने को मिलता है। *'बीता हुआ समय'* उपन्यास में खान मजदूरों विशेषकर आदिवासी मजदूरों के खान मालिकों और उनके कर्मचारियों द्वारा शोषण का चित्रण किया गया है। खान मालिक ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने हेतू मजदूरों की नौकरी पक्की नहीं करते, उनकी सुरक्षा हेतू पर्याप्त प्रबन्ध नहीं करते तथा उन्हें सरकार द्वारा स्वीकृत सुविधाएँ भी प्रधान नहीं करते हैं। खान मालिक मजदूर संघ के नेताओं को रिश्वत देकर अपनी तरफ मिला लेते हैं, उन्हें मजदूरों के हक के लिए नहीं लडने देते हैं, ताकि मजदूर अपनी मागों के लिए आन्दोलन न कर सकें। कम्पनी के कुछ कर्मचारी महाजन बनकर मजदूरों का शोषण करते हैं। इस शोषण के खिलाफ युवा श्रम कल्याण पदाधिकारी संघर्ष करता है, किन्तु उसमें खान मालिकों द्वारा उसके लिए समस्याओं की उत्पति कर दी जाती है।

'शैलेष मटियानी' का उपन्यास *'सर्पगन्धा'* (१९७९) में भी पर्वतीय क्षेत्रों के दलित समाज का वर्णन किया है। इसमें एक ऐसा दलित समाज है, जो अपने अधिकारों की लडाई लड रहा है। 'मटियानी जी' ने इस संघर्ष और इससे जुडे आरक्षण के प्रश्न पर बहुत ही विवेक और निडरता के साथ चिन्तन का परिचय दिया है। आरक्षण के सवाल को 'मटियानी जी' ने गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। *'सर्पगन्धा'* उपन्यास में एक ठाकुर जाति की विधवा का दलित समाज के एक गम्भीर और विवेकशील शिक्षक से विवाह हो जाता है। उस स्थिति तथा घोर मानसिक और संस्कारगत संघर्ष से गुजरते हुए उसका अपने को वर्ग मुक्त मरने की कोशिश

उपन्यास को नवीन आयाम प्रदान करता है। इसमें भारतीय राजनीति के अन्दर से शैतान और बाहर से सन्त दिखने वाले नेताओं का वर्णन भी किया गया। इसके सामने दलित अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं।

'भीष्म साहनी जी' के उपन्यास *'तमस'* (१९७३), *'बसन्ती'* (१९८०) में भी हमे दलित आक्रोश देखने को मिलता है। *'बसन्ती'* उपन्यास में 'भीष्म साहनी जी' ने दिल्ली महानगर में लगातार बनने वाली कालोनियों तथा उनके पास ही खाली सरकारी जमीन पर दलित वर्ग के मजदूरों, नाइयों, धोबियों आदि कितने ही पेशे वालों की अनाधिकृत रूप से बस गयी झुग्गी झोंपडी वाली गन्दी बस्तियों का अंकन किया है। इन बस्तियों में दिल्ली के पास या फिर दूर देश से आए हुए लोग जीविका की तलाश मे चले आते हैं। इनका अपना कोई घर नहीं होता है, अतः वही पर झुग्गी–झोंपडी बनाकर रहना शुरू कर देते हैं। हमारी सरकार पहले तो उन्हें कुछ नहीं कहती, किन्तु जब दलित वर्ग अपने रहने हेतू झुग्गी–झोंपडी का इन्तजाम कर लेते हैं, तब सरकार की आँखों में वह खटकने लग जाते हैं। पुलिस का जोर भी गरीब मजदूरों पर ही चलता है। अमीरों के बारे में तो इन्हें सोचना ही मना है। आखिर पुलिस गरीबों का एकमात्र रहने का स्थान भी उजाड देती है। इन सब का गहरी मानवीय संवेदना के साथ अंकन करने का 'भीष्म जी' ने प्रयास किया है। इसमें बसन्ती का बाप चौधरी अपनी चौदह वर्षीय पुत्री को पैसे की लालच में एक ज्यादा उम्र के दर्जी बुलाकी को बेचने का वादा करके घर आता है और अपनी पत्नी से कहता है –

> **"जाग गई बसंती? ले, उसे यह जोडा पहना दे। दूल्हा अभी आ रहा है। आज ही लडकी के हाथ पीले कर देंगे। मैं बात कर आया हूँ।"** (*बसन्ती, पृ. ४१*)

इससे पता चलता है, कि दलित वर्ग के लोग रूपये के लिए अपनी कम उम्र की बेटी तक को दाव पर लगा देते हैं, किन्तु बसन्ती उनके सामने विद्रोह करती है। इन अस्थायी बस्तियों की भी अपनी एक व्यवस्था एक जीवन जीने की तरीका, एक संस्कृति होती है। सारे अस्थायी होने के बावजूद इन बस्तियों में जीवन अपनी समस्त धडकनों के साथ चलता रहता है। 'भीष्म साहनी' ने इस जीवन की धडकन को, उसकी व्यवस्था की कडवाहट को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

HANSA MEHTA LIBRARY

"हाय, बीबी जी, सच, बहुत बुरी होती है। उस दिन सुबह मेरा ब्याह होने वाला था। रात को मैंने गोलियाँ खालीं और खाकर सो गई। मैनें सोचा सोए-सोए मर जाँऊगी पर, आधी रात को, बीबीजी मैं उठ खडी हुई, मुझें लगा जैसे मेरे अन्दर आग लग गई है, जैसे अंदर ही अंदर जल रही हूँ। बाहर पानी का घडा रखा था। मैं भागकर बाहर आई और ढेर सारा पानी पिया, पीती गई, आग बुझी ही नहीं। फिर मुझे कै आई, बडी जोर की, और सभी गोलियाँ बाहर निकल गई। कहकर बसन्ती हँसने लगी।" *(बसन्ती, पृ. ४१)*

इस प्रसंग में बसन्ती के पिता जब उसकी पैसे के लालच में किसी बुड्डे से शादी करवाना चाहते थे। तो फिर बसन्ती ने क्या किया, वहीं वृतान्त वह, जिसके यहाँ काम करती है, उसका नाम श्यामा बीबी जी है, उसे सुना रही हैं, कि बीबी जी सुबह मेरा विवाह होने वाला था, जो मुझे कतई पसन्द नहीं था। अतः बसन्ती ने चूहे मारने वाली दवा खा ली, किन्तु किस्मत तो देखिए दलित आदमी अगर मरना चाहें, तो भी मुसीबत उसका पीछा नहीं छोडती है। इस परिवेश में उभरती उपन्यास की केन्द्रीय पात्र बसन्ती की तस्वीर जो इस वर्तमान व्यवस्था से अपने जीने का हक माँगने की मुद्रा में पूरे उपन्यास में उपस्थित रहती है। बसन्ती उस भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो व्यवस्था के अनेक शोषणों की शिकार है। बसन्ती के शोषण से पता चलता है, कि खून के रिश्ते भी कितने बेमानी हो जाते हैं। अतः नारी की पीडा का बहुत ही मार्मिक संकेत उपन्यास में दिखाई पडता है। किन्तु इस उपन्यास में बसन्ती शोषण का शिकार होकर भी हार नहीं मानती है। वह पूरी व्यवस्था से विद्रोह करती है तथा उससे लडती है।

'भीष्म साहनी' के उपन्यास *'तमस'* में भी दलित आक्रोश दिखाई पडता है। *'तमस'* उपन्यास में हिन्दू व मुसलमान दोनों के झगडे में बेचारा दलित वर्ग सबसे ज्यादा आहत होता है

"मुझे मालूम होता तो मैं यह काम क्यों करता ?" नत्थू बुदबुदाया, "मुझसे तो कहा सलोतरी साहब ने सुअर माँगा है ।" फिर नत्थू अपनी उधेडबुन में और भी गहरा डूबते हुए बोला, "कल रात मुरादअली को मैंने देखा था पर वह मेरे साथ बोला ही नहीं । मैं उसके पीछे-पीछे भागता था और वह आगे ही आगे बढता गया । उसने मेरे साथ बात तक नहीं की ......" नत्थू की आवाज अनिश्चय में

खो सी गयी, मानो उसके मन में सन्देह उठने लगा हो कि क्या सचमुच उसने मुराद्अली को देखा भी था या नहीं।" (*तमस, पृ. १६०*)

नत्थू एक गरीब दलित वर्ग का आदमी है। जानवरों को मारना व उसकी खाल चमडें के लिए खीचना उसका काम है। यही उसकी आजीविका है, किन्तु मुराद्अली जैसे लोग, जो हिन्दू व मुस्लिम के बीच दंगा करवाना चाहते हैं, वे नत्थू जैसे भोले-भाले दलित से सुअर मरवाकर मस्जिद के सामने फिकवा देते हैं। नत्थू को जब पता चलता है, कि मस्जिद के सामने वाला सुअर तो उसी ने मारा है, तो उसकी गरदन नीचे झुक जाती है, वह स्वंय को इस विवाद का कारण समझने लगता है। नत्थू अपनी पत्नी के पूछने पर बताता है, कि अगर मूझे मालूम होता तो वह ऐसा काम कभी नहीं करता। मुझसे तो सालोतरी साहब का नाम लेकर सुअर मरवाया है। कल रात को मुझे मुरादअली दिखा था। किन्तु वह नजरे चुराकर वहाँ से भाग गया। अत: इससे हमें पता चलता है, कि दलित वर्ग के लोगों को पागल बनाकर या फिर लालच देखर हिंसक काम करवाए जाते हैं। इसमें हमें दलितों का आक्रोश देखने को मिलता है।

'शिवप्रसाद सिंह' का उपन्यास *'शैलूष'* (१९८९) में विन्ध्य क्षेत्र के दलित कबीलाई नटों को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। इस उपन्यास में एक शिक्षा प्राप्त अर्थात पढी-लिखी ब्राह्मण नामक औरत सावित्री, एक नट युवक से प्रेम करने लगती है और फिर उसी नट युवक से दलित होने के बावजूद विवाह कर लेती है। नट पत्नी बनकर उच्च वर्ग के दमन और शोषण से नटों की मुक्ति हेतू सावित्री संघर्ष छेड देती है। इस संघर्ष में सावित्री सफल भी होती है। इस समाज में जीत आखिर नट समाज की ही होती है। *'संजीव के धार'* (१९९०) उपन्यास में भी छोटा नागपुर के आदिवासियों तथा बाहर से आकर बस गए गुलगुलिया, बाहुरी, मोची आदि दलित जनों के जीवन का अंकन किया है। दलितों पर कोयला-माफियाओं, ठेकेदारों और पुलिस के अत्याचार व शोषण की कहानी बडी ही रोमांचक ढंग से कहीं गई है। इस उपन्यास में प्रमुख दलित पात्र मैना के रूप में अपने पूरे स्वाभिमान और चेतना के साथ संघर्ष करती हुई सामने आती है। मैना की जिन्दगी बाहर से बहुत ही धिनौनी है, किन्तु अन्दर से बहुत अधिक संवेदनशील, स्वाभिमानी और उदारता लिए हुए है। मैना के चरित्र में एक दलित स्त्री का दुख और उसकी मानवीय संवेदना पूरी तरह से प्रकाशित हुई है।

दलित आक्रोश हमें 'अमृतलाल नागर' के उपन्यासों में भी देखने को मिलता है। इनका *'नाच्चो हुत गोपाल'* (१९७८) में दलित आक्रोश दिखाई पडता है। इस उपन्यास में हरिजन जाति को कथ्य विषय के तौर पर लिया गया है। हरिजन वो जाति है, जो साफ–सफाई का काम करती है और दलितों की श्रेणी में आती है। *'नाच्यो बहुत गोपाल'* उपन्यास में हरिजनों के जीवन की कुछ कडवी तथा नारकीय सच्चाईयों का बहुत ही संवेदनापूर्ण वर्णन किया है। हरिजनों की ऐतिहासिक सच्चाई अगर देखे तो यह है, कि पहले राजाओं महाराजाओं के समय जब युद्ध हुआ करते थे, तब जो जातियाँ जीत जाती थी, वो हारी हुई जातियों से यह का काम करने के लिए मजबूर कर देती थी। अत: उनकी इसी विवशता के नारकीय अनुभव को चित्रित करने के लिए 'अमृत लाल नागर' ने निर्गुनिया नामक पात्र की कथा कल्पित की है। निर्गुनिया एक उच्च कुल के ब्राह्मण की पुत्री के रूप में जन्म लेती है, किन्तु सामाजिक व पारिवारिक परिस्थितियों के कारण एक हरिजन लडके से प्यार कर बैठती है। लेकिन अति तो तब होती है, जब वह उस हरिजन लडके के साथ भाग जाती है। इसके बाद तो मानो हंगामा शुरू हो जाता है। उस निर्गुनिया का ब्राह्मण से भंगी में रूपान्तरित होने की जो प्रक्रिया थी, उसका अत्यन्त डरावना और भयानक वर्णन किया गया है। समाज ने उन्हें अपमानित किया जाने लगा। सामाजिक शोषण व अपमान का जो दर्द उन्होंने झेला, वह बडा ही दर्दमयी है। निर्गुनिया का समाज द्वारा शोषण एक दलित वर्ग का शोषण ही नहीं, बल्कि एक स्त्री का शोषण भी है।

'गिरिराज किशोर' के उपन्यासों में भी दलित वर्ग का आक्रोश दिखाई पडता है। उनके उपन्यास *'यथाप्रस्तावित'* (१९८२) और *'परिशिष्ट'* (१९८४) में दलित वर्ग का चित्रण किया गया है। दोनों हीं उपन्यासों में सामाजिक उत्पीडन और भयंकर क्रूरता के शिकार दलित वर्ग का अंकन हुआ है। सरकारी व शिक्षण संस्थाओं के अमानवीय व्यवहार व उसमें पिसते–छटपटाते दलित वर्ग का 'गिरिराज किशोर' ने बखूबी वर्णन किया है। बहुत से सालों से अन्य वर्णी द्वारा दलित वर्ग का शोषण किया जाता है, उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु दलित वर्ग ने हार नहीं मानी, बल्कि आज की भारतीय संविधान और अपनी जागरूकता के बल पर अपने मानव अधिकारों के लिए लडाई लड रहा है। इस बदलते युग की दलित वर्ग आज भी अन्य वर्गों द्वारा सामाजिक व आर्थिक शोषण का शिकार है। अत:*'यथाप्रस्तावित'* उपन्यास में 'गिरिराज किशोर' ने दलितों के प्रति सर्वण समाज के लोगों द्वारा क्रूर व अमानवीय व्यवहार तथा सरकारी महकमों में उनके साथ तिकडम पूर्ण व भ्रष्ट व्यवहार का शसक्त अंकन किया गया है। 'गिरिराज

किशोर' के एक अन्य उपन्यास *'परिशिष्ट'*(१९८४) में भी *'यथाप्रस्तावित'*की ही तरह दलित आक्रोश देखने को मिलता है। आजकल दलित जाति के उत्थान हेतू संविधान द्वारा शिक्षा व नौकरियों में आरक्षण की सुविधा प्रदान कर दी गई है। दलित वर्गो को अन्य वर्गो की अपेक्षा ज्यादा सुविधाएँ उपलब्ध करवा दी, ताकि उनका उत्थान हो सकें। इस सरलता की वजह से दलित लोग सरकारी नौकरियों में आसानी से घुस तो जाते हैं, किन्तु बाद में सभी उन्हें परेशान करने लगते हैं। उच्च वर्ग के लोगों की वहीं पुरानी मानसिकता की वजह से शिक्षा संस्थानों में भी अनेक भयावह स्थितियों से गुजरना पडता है। इस प्रकार की सभी सस्याओं में दलित वर्ग के छात्रों को सवर्ण छात्र इस नजर से देखते हैं, मानो किसी पवित्र मन्दिर में अपवित्र घुस आया हो। दलित वर्ग के छात्रों को सभी जगह अपमानित होना पडता है, फिर चाहे वह खेल का मैदान हो या फिर भोजनालय हो या फिर कोई अतिथि भवन हो, सब जगह इनको अपमानित किया जाता है। अत: दलितों की इसी स्थिति का 'गिरिराज जी' ने अपने उपन्यास *'परिशिष्ट'*में किया है। आरक्षण के कोटे से भर्ती हुए छात्र यहाँ की शिक्षा पद्धति के-साथ चल भी नहीं पाते हैं, किन्तु दलितों के परिवार में पढें-लिखें लोग कम ही होते हैं। अत: उन्हें ऐसा माहौल नहीं मिल पाता है, जिससे उन्हें पढाई में कोई मदद कर सकें या फिर उसे पढने के लिए उत्साहित कर सकें। आज के युग की ज्यादातर पढाई अंग्रेजी भाषा में ही होती है, साथ ही स्कुलों में बातचीत भी अंग्रेजी भाषा में ही करनी पडती है। दलित वर्ग को अंग्रेजी में पढने व बोलने में काफी परेशानी महसूस होती है। इसी असमर्थता के कारण अन्य छात्रों द्वारा उन्हें जगह-जगह पर अपमानित होना पडता है। अत: ऐसी स्थिती में दलित छात्र तकनीकी संस्थाओं में अपनी पढाई पूरी नहीं कर पाते और कई छात्र तो मानसिक दबाव के चलते आत्महत्या भी कर लेते हैं। अत: इस क्रूर वास्तविकता का मार्मिक चित्रण परिशिष्ट उपन्यास में किया गया है।

'रमेशचन्द्र शाह' के उपन्यास *'किस्सा गुलाम'*(१९८६) में दलित जाति मे पैदा हुए एक कुन्दन नामक पात्र के गुस्से और आक्रोश की भावना का चित्रण किया गया है। कुन्दन अत्यन्त संवेदनशील इन्सान के रूप में पहचाना जाता है। कुन्दन पात्र दलित समाज में आजकल उत्पन्न हो रही राजनीति चेतना और सामाजिक आक्रोश का प्रतिनिधित्व करता है। कुन्दन उस समाज द्वारा बनायी हुई व्यवस्था प्रणाली को नकारता है, जिसमें एक शुद्ध इन्सान किसी ब्राह्मण युवती से शादी नहीं कर सकता है। अत: इससे कुन्दन के चरित्र का पता चलता है, कि कुन्दन दलितोत्थान की भावना रखता है। वह उस धर्म को भी नकारता है, जिसमे दलितों को अपमानित होना पडता

है। वह उस शास्त्र को भी नकारता है, जिसमें दलितों को नीच जाति कहा गया है। इस आक्रोशित व विद्रोही मानसिकता के कारण वह विदेश में जाकर रहने लगता है और अपने देश जब वापिस आता भी है, तो एक विदेशी नागरिक के रूप में आता है, ताकि उसे समाज में सम्मान मिल सकें। यह तो तय है, कि जब कोई साधारण या फिर निम्न वर्ग का इन्सान विदेश होकर लौटता है, तो सभी लोग उसको बडा आदमी समझ कर हमेशा सम्मान करते हैं। अतः इस उपन्यास की कथा से तो यह समझनें में आता है, कि 'रमेशचन्द्र शाह' ने भी दलित आक्रोश का अपने उपन्यासों में अच्छा अंकन किया है।

दलित आक्रोश पर अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी चलाई है, उनमें से 'शैलेश मटियानी', 'जगदीशचन्द्र', 'अमृतलाल नागर', 'गिरिराज किशोर', 'मैत्रेयी पुष्पा' आदि प्रमुख है। दलित वर्ग समाज के ऐतिहासिक दौर में बहुत बुरी यातनाओं से गुजरा है। पहले इन चार वर्गो में से तीन वर्गो को ही प्रमुखता दी जाती थी, जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि शास्त्रों द्वारा बतलाए गए है। ब्राह्मण को सबसे उच्च कुल माना जाता था और क्षत्रिय राजपूत लोग होते थे, किन्तु इनका कुल भी ऊँचा ही माना जाता था, वैश्य लोग खेती बाडी किया करते थे, इनका कुल भी इतना बुरा नहीं माना जाता था, कि जितना बुरा शूद्र वर्ग को माना जाता था। शूद्र लोगों को स्पर्श करना भी पाप माना जाता था, अगर कोई शूद्र गलती से किसी स्वर्ण को छू जाता था, तो उसे सजा मिलती थी और जिस स्वर्ण को वह स्पर्श करता है, उसे गंगाजल से नहाना होता था। शूद्र लोग मजदूरी का काम व गन्दी नालियाँ साफ करने का काम किया करते थे। किन्तु आज़ादी के पश्चात् संविधान ने जबसे दलित वर्ग को आरक्षण प्रदान किया है, तभी से इनकी स्थिति में सुधार आया है। बडे-बडे पदों पर दलित वर्ग आज विद्यमान है, जिससे की समाज की परम्परावादी सोच की बदल गई है। कुछ लोग तो आज शूद्रों को अपने समान ही समझते हैं, किन्तु अभी भी कुछ ऐसे लोग है, जो इन्हें अपमानित करने में पीछे नहीं हटते हैं।

३.१.५ नवयुवक आक्रोश

'शिवप्रसाद सिंह' ने अपने उपन्यास में नवयुवक आक्रोश का वर्णन किया है। सन् १९७४ ई. में उनका एक उपन्यास *'गली आगे मुडती है'* प्रकाशित हुआ। *'गली आगे मुडती है'* उपन्यास में 'शिवप्रसाद जी' ने केन्द्रीय विषय नवयुवक आक्रोश ही रखा है। 'शिवप्रसाद जी' ने युवा आक्रोश के बारे मे कुछ इस प्रकार कहा है, कि युवा आक्रोश पूरे युवा समाज में फैली वस्तु है। वह केवल छात्र असन्तोष या छात्र अशान्ति नहीं है, युवा एक शक्ति है, भविष्य को मोडने का कार्य इन्हीं के हाथों सम्पन्न होगा। अत: इससे पता चलता है, कि उपन्यासकार नवयुवक के लिए क्या विचार रखते हैं। इनके अनुसार युवा शक्ति से ही इस राष्ट्र को नयी दिशा प्राप्त होगी और युवा शक्ति से ही देश का नवीन निर्माण होगा। अत: आज के समाज में नवयुवक शक्ति का एक होना बहुत जरूरी है। वही इस नए समाज को बेहतरीन ढंग से निर्माण कर सकता है। नवयुवक वर्ग में उत्साह व जोश प्रर्याप्त मात्रा में मिलता है, जिसकी समस्त राष्ट्र को बहुत जरूरत है। युवा आक्रोश से जुडे इस उपन्यास को उपन्यासकार ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर के सन्र्दभ में प्रस्तुत किया है। सातवें दशक में अनेक कारणों से उत्पन्न हुए छात्रों के असन्तोष और अंग्रेजी हटाओं आन्दोलन से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही नहीं बल्कि वाराणसी का सम्पूर्ण शिक्षा परिसर क्षुब्ध और अशान्त था। अत: उपन्यासकार ने इसी छात्र असन्तोष व आक्रोश का सजीव चित्रण 'शिवप्रसाद सिंह' ने 'गली आगे मुडती है' में किया है। इन्होंने यह स्पष्ट किया है, कि यह उपन्यास सिर्फ युवक आक्रोश पर ही लिखा उपन्यास नहीं है, बल्कि इसमें आजादी के पश्चात् नवीन शक्ल-सूरत लेती काशी का भी वर्णन है। काशी भारत की एक बहुत ही देवताओं के समय से चली आ रही प्राचीन नगरी है। यहाँ पर देश की सभी संस्कृतियाँ एक दूसरे से मिल जाती है। सन् १९६७ ई. में काशी नगरी में बाढ आयी थी, यह बाढ उपन्यास में एक प्राकृतिक आपदा के स्वरूप में ही नहीं, बल्कि नवयुवक पीढी ने नवीन तेवर और अराजकता के प्रतीक के रूप में भी चित्रित हुई है। *'गली आगे मुडती है'* उपन्यास का कथा विषय काशी के इस पूरे परिवेश में निर्मित होने के कारण काफी मनमोहक बन गया है। काशी नगरी में पनपे युवा आक्रोश को इस उपन्यास में महत्वपूर्ण प्रमुखता प्रदान की गई है। नवयुवकों के मन में पुरानी गली सडी परम्पराओं व व्यवस्थाओं को लेकर आक्रोश का भरना ही इस उपन्यास में बताया है। 'शिवप्रसाद सिंह' ने *'गली आगे मुडती है'* उपन्यास में असन्तोष व आक्रोश के मूल कारणों को अच्छे से सोच विचार करके इनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास

किया है। भारतीय नवयुवक पीढी, विशेष कर छात्र समुदाय सातवें दशक में जितने असंतुष्ट, दिशाभ्रम थे, उससे कहीं ज्यादा आज ये लोग भ्रमित है। इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र रामानन्द तिवारी अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचते हैं, कि मजदूर और कृषक के पश्चात् छात्र को तृतीय शक्ति के रूप में देखना भ्रम मात्र है।

> **"आज वह अपनी मजबूरियों के कारण, क्षणिक सुविधा और लिप्सा के कारण बिक चुका है। जो नहीं बिके हैं, वे परीक्षाएँ पास करके बेरोजगारी के पागलपन का शिकार हो रहे हैं। विदेशी सभ्यता की नकल की बाढ ने हमारे भीतर के गटर को रूंध दिया है और हम उसी गंदले गलीज में डुबकियाँ ले रहे हैं।"** (*गली आगे मुडती है, पृ. ३४८*)

अतः *'गली आगे मुडती है'* के केन्द्रीय पात्र युवा रामानन्द तिवारी युवा पीढी के बारे में चिन्ता व्यक्त करते हुए कह रहे हैं, कि आज के छात्र कुछ तो अपनी आर्थिक विवशता की वजह से बिक जाता है, तो कुछ अपने भोग की सुविधा हेतू बिक जाता है और जो नहीं बिकता है, वे सभी आज के युग में मारे-मारे फिरते हैं और बेरोजगारी के शिकार हो जाते हैं और इसी बेरोजगारी के चलते सदमें मे पागल हो जाते हैं। आजकल ज्यादातर नवयुवक आर्थिक तंगी से परेशान होकर वो काम भी करने लगते हैं, जो उनका जमीर गँवारा नहीं करता, किन्तु अपने परिवार में माँ-बाप, बीवी-बच्चे आदि के लिए वह उस आग में कुद जाता है और परिणाम की परवाह किए बिना गलत काम करता जाता है। इस सदी के आठवें दशक में सम्पूर्ण क्रान्ति के रूप में उभरी युवा शक्ति का जो घिनौना स्वरूप आज हमें दिखाई दे रहा है, वही इस उपन्यास का विषय रहा है। इस उपन्यास के पात्र रामानन्द पढा-लिखा होने के बावजूद हमेशा रोजगार की तलाश में काशी की गलियों में ही घूमता रहता है।

'विमल मित्र' के प्रख्यात उपन्यास *'परस्त्री'* (१९७०) में भी कथ्य विषय के रूप में नवयुवक आक्रोश को ही लिया है। इसमें एक ऐसे आदर्शवादी युवक की कहानी है, जो अपनी जिन्दगी में कुछ महान कार्य करने की इच्छा रखता है। लेकिन फिर उसके जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित होती है, जिससे की वह जो बनना चाहता था, वह नहीं बनकर, कुछ ओर ही बन जाता है। उससें यह बनने की कभी कल्पना तक भी नहीं की थी। इन मुसीबतों के चक्र में फँस कर वह कई कठिन रास्तों से गुजरता है और अन्त में जो वह चाहता है, वो पाकर ही रहता है।

तब उसे जीवन की सच्चाई का ज्ञान होता है। इस घटना क्रम में उसे जीवन के अनेक तरह के स्वरूप देखने को मिलते हैं, जिसमें उसे बहुत कुछ त्यागना भी पडता है। विकृतियों का सुख प्राप्त करते हुए उसने कीचड में कमल की तरह खिलने वाले स्वरूप को भी देखा। इस उपन्यास में सिर से पैर तक भ्रष्टाचार में डूब चुके व्यवस्था तंत्र तथा उससे छुटकारा पाने हेतू छटपटाते साधारण जन की देखने का बहुत ही सजीव चित्रण इस उपन्यास में अंकित किया गया है, जो समस्त् परेशानियों से तंग आकर आक्रोशित हो जाता है और समाज के भ्रष्टाचार उसे विरोध करने की शक्ति प्रदान करते हैं।

'देवेश ठाकुर' ने की नवयुवक आक्रोश को अपने उपन्यास में चित्रित किया है। उनका उपन्यास *'भ्रम-भंग'*जो १९७५ ई. में प्रकाशित हुआ है, उसमें एक मध्यमवर्गीय युवक के अपने परिवेश व परिवार से संघर्ष का अंकन किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश मे विकसित समाज व्यवस्था में नवयुवक अनेक विसंगतियों और मुसीबतों का शिकार हो गया। इस व्यवस्था में जहाँ उच्च वर्ग के युवक शिक्षा और बेकारी की चिन्ताओं से मुक्त हुए, वहाँ मध्यवर्ग के युवक अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में जीवन जीने के लिए विवश हो गए। उच्च वर्ग के नवयुवक धन-सम्पत्ति के बल पर जहाँ चाहे वहाँ बगैर ज्यादा मेहनत किए नौकरी प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु बेचारे साधारण बेरोजगार छात्र के पास न तो धन सम्पत्ति है, जिसे वह अफसरों को देकर आर्थिक तंगी दूर कर सकें और साथ में मुसीबतें उसका पीछा छोडने को तैयार नहीं है। संयुक्त परिवार के सदस्यों, यहाँ तक कि माता-पिता और भाई-बहनों के स्वार्थ पूर्ण क्रूर रवैये से उनका वैवाहिक जीवन भी नरक बनने लगा। उपन्यासकार 'देवेश ठाकुर' ने इस उपन्यास के पात्र नायक चन्दन के माध्यम से इन सभी स्थितियों व परिस्थितियों का यर्थाथ चित्रण किया है। इसके साथ ही कथाकार ने मुम्बई महानगर के कॉलेज शिक्षकों की जिन्दगी का भी विश्वसनीयता के साथ अंकन किया है। इन कॉलेजों में महाजनों और उद्योगपतियों की सन्तानों के बुरे व्यवहार का भी वर्णन किया है। इन बडें लोगों की सन्ताने भी बिगडैल व संस्कारहीन होती है। कॉलेज में हो रही राजनीति, जिसमें एक इन्सान दूसरे को गिराने में लगा है तथा स्वयं सर्वेसर्वा बन जाना चाहता है, उसका भी अच्छा अंकन 'भ्रम-भंग' उपन्यास में किया गया है। कॉलेज के बाहर की शिक्षकों की जिन्दगी का भी विश्वसनीय के साथ अंकन किया है। केम्पस के बाहर किसी शिक्षक की होटल के कमरे की जिन्दगी का भी वर्णन किया है। लोकल ट्रेनों और बसों की भीड में धक्का-मुक्की करके रोजाना कॉलेज जाने और वापस लौटने आदि का यर्थाथ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

नवयुवक छात्र रोज लोकल ट्रेनों से या फिर वहाँ की बसों से सफर करते हैं, क्योंकि साधारण छात्र ज्यादा महँगा किराया वहन नहीं कर सकता, किन्तु लोकल ट्रेन व बसें ही उसके अनुकूल है। अत: वह खचाखच भरी हुई बसों में भी धक्का-मुक्की कर चढ जाते हैं। उपन्यासकार ने मुम्बई के नवयुवक लोगों की संघर्षपूर्ण जिन्दगी और वहाँ के प्रवासी समाज के जीवन के साथ-साथ पूँजीवादी व्यवस्था की असंगतियों का अंकन किया है। पूँजीवादी महाजनों के बिगडे हुए पुत्र कॉलेज में स्वयं को सबसे ऊपर मानते हैं, वे जब चाहे जिस पर भी हुक्म चलाते हैं, किन्तु साधारण या फिर मध्यवर्ग के नवयुवक उनकी इस हरकतों से तंग आकर उनके खिलाफ विद्रोह छेड देते हैं। साधारण छात्रों के मन में उनके प्रति प्रेम व सद्‌भावना की नहीं, बल्कि आक्रोश की भावना भरी रहती है।

आजादी के पश्चात् शिक्षा जगत के नवयुवकों का एक ऐसा सच सामने आया, जो पहले ना के बराबर था। यद्यपि महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन से ही परिसर जीवन में विद्रोह की स्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थी, पर स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी उपन्यास में उनका चित्रण बहुत न्यून मात्रा में देखने को मिलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व महात्मा गाँधी द्वारा किए गए भारत छोडों आन्दोलन में नवयुवकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी, जिसका बडे बैमाने पर चित्रण 'यशपाल' के उपन्यास *'मेरी तेरी उसकी बात'* (१९७४) में किया गया है। कुछ समय पश्चात् विश्वविद्यालय के परिसर में जब युवकों की राजनीतिक गतिविधियाँ तेज होने लगी और छात्र संघो की माँगें जोर पकडने लगी। नवयुवक संघ अपनी माँगें पूरी करने हेतू तोड-फोड पर उतर गए। आक्रोशित छात्र संघ वह सब करने लगे जो छात्रों की शिक्षा के लिए-हानिकारक है। सभी नवयुवक राजनीति की चपेट में आने लगे और थोडी बहुत समस्या पर ही धरने देने लग गए। उनकी शिक्षा की तरफ रूचि कम होने लग गई और गुण्डागर्दी विश्वविद्यालय में तेजी से फैंलने लगी। बस इसी नवयुवक आक्रोश का वर्णन 'यशपाल' ने किया है।

सदी के अन्तिम दशक में 'रमाकान्त' ने *'जुलूस वाला आदमी'* (१९९३)उपन्यास में आजादी के बाद के परिसर जीवन में आए बदलाव की कहानी चित्रित है। अर्थात् आजादी के पहले नवयुवक आक्रोश कहाँ था व आज कहाँ पर है। इसमें 'रमाकान्त जी' ने नवयुवक आन्दोलन का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। धीरे-धीरे इन युवा पीढी के द्वारा किए गए आन्दोलन इस प्रकार से शक्तिशाली होने लग गए, कि राजनीतिक दल भी इनमें रूचि लेने लगे थे। शिक्षा परिसर में अब इस तरह की चुनाव जीतने की मारा-मारी होने लगी की नवयुवक छात्र

नेता पैसे का बल भी दिखाने लगे थे। 'रमाकान्त' की सहानूभूति वामपन्थी दल के साथ है और यह सही है, कि उस दशक के युवा आन्दोलन में वामपन्थी दल के युवाओं के दल की भूमिका समारात्मक थी। बाकि सभी दलों की भूमिका नकारात्मक कहीं गयी है। फिर भी रमाकान्त ने जनवादी युवा आन्दोलन के बीच उत्पन्न हुए विरोधों को अनदेखा नहीं किया है। उपान्यासकार ने विश्वविद्यालयों में युवाओं के नामांकन से लेकर अध्यापकों और अधिकारियों की नियुक्ति तक में होने वाली धाँधलियों तथा शिक्षण संस्थाओं में नवयुवक आक्रोश के बढते हस्तक्षेप का सजीव चित्रण किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा परिसर में सकारात्मक परिवर्तन भी हुए, पर उनकी अपेक्षा कहीं ज्यादा नकारात्मक परिवर्तन हुए, जिनकी आवाज हिन्दी उपन्यास में भी सुनाई पडती है। नवयुवक जीवन की गतिविधियों में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप छठें दशक में ही शुरू हो चुका था। सातवें दशक में तो युवा पीढी राजनीतिक दलों का चरागाह बन गया। अपने राजनीतिक हितों की पूर्ती के लिए सभी राजनीतिक दल युवा शक्ति का दोहन करने में एक–दूसरे से आगे बढ जाने की प्रतियोगिता में शामिल हो गए। 'डॉ. सत्येकु सांकृत' के अनुसार *"इसी समय प्रजातान्त्रिक राजनीति ने छात्रशक्ति का दुरूपयोग करना प्रारम्भ किया और छात्र बडी संख्या में राजनीतिक प्रेरित आन्दोलनों में हिस्सा लेने लगे। बिना पढाई किए ही डिग्री प्राप्त करने की आकांक्षा ने छात्रों की परीक्षाओं में नकल की छूट के लिए आन्दोलन करने के लिए प्रेरित किया। राजनीतिक दलों ने इस प्रवृत्ति को प्रच्छन्न रूप से बढावा देकर छात्रों को और भी अध्ययन विमुख किया। बसों के किराये और सिनेमा के टिकटों में छूट के लिए भी छात्र आन्दोलन पर उतारू हो गये।.... छात्र संघों के साथ परिसर के बाहर की गन्दी राजनीति, जो जातिवाद, सम्प्रदायवाद और धन तथा गुडांगर्दी पर आधारित थी, परिसर में भी प्रविष्ट हो गयी। परिसर में शिक्षक अप्रांसगिक और युवक नेता प्रमुख बन गये ।"*

नवयुवक आक्रोश को गम्भीर विमर्श का विषय बनाने वाले उपन्यासकार में 'काशीनाथ सिंह जी' भी है, जिसका उपन्यास *'अपना मोर्चा'* (१९७२) नवयुवक आन्दोलन को विषय बनाकर लिखा गया उपन्यास है। सातवें दशक में अनेक कारणों से उत्पन्न हुए नवयुवक असन्तोष और अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन से उत्तरी भारत का शैक्षिक परिसर क्षुब्द और अशान्त हो गया था। *'अपना मोर्चा'* उपन्यास में समस्या से नवयुवकों ने टकराने की एक ईमानदार कोशिश की है। उपन्यासकार ने बहुत ही सरलभाव से छोटे स्वार्थी और सीमाओं में बँधें हुए अध्यापकों, अधिकारियों, दिशाहीन नवयुवकों और उनसे उदासीन व्यवस्था का चेहरा बेनकाब किया है।

'विवेकी राय' ने *'समर शेष है'* (१९८८) उपन्यास में शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी, राजनीति हस्तक्षेप तथा युवा पीढी की दिनों-दिन बढती विकृतियों का यर्थाथ चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें बताया है कि, जब शिक्षा जगत में इतनी विसंगतियाँ होगी तो हमारा नवयुवक कैसा होगा। हमारी युवा पीढी को राजनीतिक दलों ने अपनी और आकर्षित कर रखा है। शिक्षा जगत में छात्र अध्यापकों के साथ मिलकर नकल की भ्रष्ट राजनीति में लिप्त है, वहाँ हर जगह अनुशासनहीनता देखने को मिलती है। अगर इन सब भ्रष्टाचारों को कुछ नवयुवक रोकना चाहते हैं, तो उनका अपमान किया जाता है तथा कॉलेज से निकाल दिया जाता है। 'विवेकी राय' ने यह बताने की कोशिश की है, कि हमारे देश का नव-निर्माण करने वाली नवयुवक पीढी आज नशीली दवाओं का सेवन करती है, साथ ही कुछ पैसों के लालच में बिक भी जाती है। नवयुवक हमारे देश का भविष्य है और अगर भविष्य की ईंट कमजोर हो, तो नींव कैसे टिक सकती है। नवयुवक ही तो हमारे देश का आने वाला कल है और आने वाला कल अगर ऐसा होगा, तो फिर हमारा देश कैसा होगा।

'श्रवण कुमार गोस्वामी' के उपन्यास *'चक्रव्यूह'* (१९८८) में भी विश्वविद्यालय के नवयुवक मंडल में आक्रोश देखने को मिलता है। आज भी यहाँ की व्यवस्था भ्रष्टाचार, षडयन्त्र और गन्दी राजनीति से दूषित हो गई है। इसके प्रमुख पात्र शैलेश के मन की स्थिति व उसके अन्दर चल रहे अन्दर ही अन्दर द्वन्द्व तथा मानसिक उठापटक का संवेदना के साथ अंकन में भी उपन्यासकार को अद्‌भुत सफलता मिली है। नवयुवक एक ऐसी शक्ति है, जो इन सभी भ्रष्टाचारों को जड से उठा कर फैंक सकती है। और कुछ हद तक 'चक्रव्यूह' उपन्यास में ऐसा हुआ भी है। नवयुवक के जीवन की विकृति केवल उत्तर भारत की सच्चाई नहीं है। आठवें दशक तक आते-आते बम्बई और गुजरात जैसे राज्यों में भी नवयुवक के जीवन में आक्रोश की शुरूआत हो गयी।

'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' के उपन्यास *'कटा हुआ आसमान'* (१९७१) में मुम्बई की महानगरीय जिन्दगी के एक पक्ष के नवयुवक आक्रोश को दिखाने का प्रयास किया है। इसमें आज के नवयुवक बेरोजगारी से तंग आकर काम की तलाश में भारत के भिन्न-भिन्न हिस्से से बम्बई आते हैं। यहाँ आने के बाद कुछ नवयुवक तो काम पर लग जाते हैं, किन्तु कुछ अधिक पढें-लिखे होने के कारण मजदूरी करना स्वीकार नहीं करते। उनकी इसी विवशता की वजह से उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पडता है। इस वर्ग में मध्यवर्गीय नवयुवक का उल्लेख

इस उपन्यास में मिलता है। बस इसी सब को सहन करते हुए नवयुवक आक्रोशित हो जाता है। इसमे प्रवासी मध्यवर्ग के नवयुवकों की घुटनभरी विवशता तथा टूटन का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में अलग-अलग जगहों से आए लोगों का वर्णन है, जिसमें बंगाल का बनर्जी, केरल का चेरियन, गोवा का मथायस, उत्तर प्रदेश का नौटियाल आदि उपन्यास के केन्द्रीय पात्र है, समस्त उपन्यास की कहानी इनके इर्द गिर्द घूमती है। ये सभी नवयुवक महानगर की भागदौड भरी जिन्दगी से ऊबे होने पर भी उससे निकल जाने का रास्ता नहीं खोज पाते। बीच ही बीच में उन विवशताओं व मजबूरियों का विद्रोह करने का प्रयास भी करते हैं। नौटियाल की कथा के माध्यम से उपन्यासकार ने मुम्बई के परिसर जीवन का भी चित्रण किया है। कॉलेज के ट्रष्टी के तौर पर कुछ रुपया प्रदान करने वाले सेठ लोग उस पर अपनी मनमानी चलाते हैं, उसके प्रबन्धन में टांग अडाते हैं। मुम्बई की भागदौड, फुटपाथों पर कसमसाती जिन्दगी मजदूर संघो के संघर्ष, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं और होटलों की रंगीन जिन्दगी आदि का चित्रण नवयुवक आक्रोश के साथ इस उपन्यास में हुआ है।

'ममता कालिया' के उपन्यास *'नरक-दर नरक'* (१९७५) में मौजूदा समाज व्यवस्था में नवयुवकों की भूमिका का चित्र पेश किया गया है। आज की समाज में मध्यवर्गीय शिक्षित नवयुवकों को अपनी सारी लगन मेहनत के साथ प्राप्त हुई डिग्रियों के बावजूद रोजगार के लिए दर-ब-दर भटकना पडता है। उनकी सारी प्रतिभा खाक में मिल जाती है। लेखिका ने यह बताने की कोशिश की है, कि अब डिग्रियाँ हासिल करने से ही नौकरियाँ नहीं मिलती, बल्कि अगर नौकरी पानी है, तो सिफारिश व रूपयों का दबदबा होना जरूरी है। बम्बई महानगर के शैक्षणिक वातावरण में व्याप्त शिक्षकों व अधिकारियों की गुटबन्दी, भ्रष्टाचार, अध्यापकों के प्रति अधिकारियों की साजिश व्यवस्था के प्रति छात्रों के असन्तोष अध्यापकों की घुटन भरी जिन्दगी और इन सब से तंग आकर नवयुवक आक्रोश आदि का सजीव चित्रण किया है। मध्यम वर्ग का नवयुवक की न तो किसी बडे नेता या फिर राजनेता तक पहुँच होती है, न ही उसके पास प्रर्याप्त धन होता है, जिसे देकर वह नौकरी हासिल कर सके। ऐसे वातावरण के चलते नवयुवक इस व्यवस्था के प्रति आक्रोश में भर जाता है, वह इसके प्रति विद्रोह कर बैठता है। वह स्वयं को आर्थिक तंगी से परेशान हो कर ऐसा करने से रोक नहीं पाता। बस इसी का चित्रण उपन्यासकार ने किया है।

'देवेश ठाकुर' ने भी नवयुवक आक्रोश की अपने उपन्यास का विषय बनाया है। उनके उपन्यास *'गुरूकुल'* (१९८९) में बम्बई की शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त नवयुवक आक्रोश, आर्थिक–नैतिक भ्रष्टाचार तथा शिक्षकों और अधिकारियों की गुटबन्दी का वर्णन किया है। युवा पीढी इसमें असन्तोष जाहिर करती है। 'रामदरश मिश्र' के उपन्यास *'दूसरा घर'* (१९८६) में गुजरात के विश्वविद्यालयों में व्याप्त आक्रोश व हिन्दी भाषी शिक्षकों के साथ वहाँ की व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले अमानवीय और प्रतिशोध पूर्ण व्यवहार का अंकन किया है। अतः नवयुवक पीढी में भी आक्रोश की झलक हमें साफ दिखाई पडती है। आज की इस व्यवस्था से युवा पीढी में असन्तोष की लहर दौड रही है।

३.२ विद्रोह की विभिन्न मनःस्थितियाँ

३.२.१ सामाजिक विद्रोह

हमारा समाज व्यापक समाज है। यहाँ पर समय-समय सभी की सोच में बदलाव आता रहता है। समाज को जो विचार पसन्द नहीं आता हैं, उस पर सभी मिलकर विद्रोह करने लगते हैं। बस यही विद्रोह सामाजिक विद्रोह का रूप ले लेता है। 'अमृत लाल नागर' ने अपने उपन्यासों में सामाजिक विद्रोह का बखूबी अंकन किया है। *'करवट'*(१९८५) उपन्यास में खत्री परिवार की तीन पीढियों से जिसमें लाला मुसद्दीलाल, उनके पुत्र बंशीधर टंडन और उनके पौत्र देशदीपक टंडन का अंकन किया गया है। इसमें इन तीनो पात्रों को केन्द्र में रखकर तात्कालीन समाजिक चेतना के विकास में सहयोग करने वाली प्रगतिशील शक्तियों की लडाई को भी चित्रित किया गया है। अंग्रेजी शासन जबसे भारत में आता है, तबसे भारतीय समाजिक सरंचना, रहन-सहन, वेश-भूषा व सोच में आये बदलावों का चित्रण भी मिलता है। अंग्रेजों की किसानों के प्रति जो नीति थी, वह भी प्रतिकूल थी। उस नीति की वजह से समस्त किसान भूमिहीन, कर्ज़दार व दरिद्र होते जा रहे थे। उनकी समस्याएँ और बडा रूप ले रही थी, तभी समस्त समाज ने उनसे तंग आकर अंग्रेजी शासन के प्रति सामाजिक विद्रोह छेड दिया।

'श्री लाल शुक्ल जी' के उपन्यासों में समाज की विसंगतियों पर करारा व्यंग्य किया गया है। *'मकान'*(१९७६) उपन्यास में 'शुक्ल जी' ने सामाजिक विद्रोह की स्थिति का अंकन किया है। इसमें आफिस में में काम करने वाले एक कर्मचारी संगीतज्ञ बाबू का अपने अफसर की खुशामद के लिए विभिन्न तरीके अपनाने का वर्णन है, जिससे की अफसर खुश हो जाए और संगीतज्ञ बाबू को मकान लेने में सहायता कर दे। अतः हमें देखने को मिलता है, कि आज के समय में समाज की सोच में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। कुछ सामाजिक लोग तो क्रोधित होकर विद्रोह करते हैं, तो कुछ चापलूसी करके विद्रोही मनःस्थिति पैदा करते हैं। 'शुक्ल जी' ने एक अन्य उपन्यास *'आदमी का जहर'*(१९९७) में भी सामाजिक विद्रोह के दर्शन उपलब्ध होते हैं। एक प्रसंग में अगर हम देखे, तो पुलिस वाले उमाकान्त अपने सिपाही भूपसिंह व सिद्दीकी के साथ शान्ति प्रकाश के घर पर पहुँच गए। शान्ति प्रकाश एक राजनीतिक नेता है और उमाकान्त को लगता है, कि जसवन्त आजकल उन्हीं की मदद से चुनाव लड रहा है। अतः वह शान्ति प्रकाश जी के घर में ही होगा। वहाँ पहुँच कर भूपसिंह सिपाही ने शान्ति प्रकाश से कहा :-

"जसवन्त शायद आपके बँगले में छिपा हुआ है। हमें तलाशी लेनी है।"

"पर मेरा जसवन्त से क्या मतलब? यहाँ आप तलाशी कैसे ले सकते हैं ?" उन्होंने जोर से नहीं पर दफ्तरवाले कमरे में शान्तिप्रकाश को उन लोगों से प्रतिवाद करने का मौका नहीं मिला। सिद्दीकी भूपसिंह और उमाकान्त तब तक अन्दरवाले कमरे में पहुँच गए थे। शान्तिप्रकाश हाँफते हुए उन लोगों के पीछे-पीछे भागे। बोले "उधर मत जाइए, उधर हमारा बेडरूम है। घर की स्त्रियाँ होंगी।" *(आदमी का जहर, पृ. १५१)*

इस प्रसंग में शान्तिप्रकाश पुलिस को यह समझाने का प्रयत्न करते हैं, कि उनका किसी हत्यारे से कोई सरोकार नहीं है, किन्तु जब उमाकान्त ज्यादा ही दबाव देते हैं, तो वह उन्हें रोक नहीं पाता? और रमाकान्त वहाँ एक लडकी को अन्दर पाता है, तथा समाज के उस ठेकेदार का विद्रोह करता है और कहता है, कि वह ऐसा व्यवहार न करे जिससे की समस्त समाज, सामाजिक विद्रोह कर उठे। किन्तु वह अन्दर जाने से मना ही करता रहा, जिसका विद्रोह उन सबने मिल कर किया। जब अंग्रेजी सत्ता इस देश में स्थापित हुई, तो वह पहले-पहले जो सबको लुभावनी लगने लगी किन्तु धीरे-धीरे वह अंग्रेजी लोगों ने समस्त भारत के शासन को अपने आगोश में ले लिया। अब उनके निर्दय व्यवहार से जनता तिलमिलाने लगी, वह उनसे छुटकारा पाना चाहती थी, किन्तु हिम्मत नहीं कर पाते थे। विदेशी शासन के अफसरों ने किसानों की पैदावार पर इतना भारी लगान लगा दिया, कि साधारण किसान व मजदूर उसे चुका पाने में असमर्थ हो रहा था। ऐसे में किसान व मजदूर वर्ग भुख व गरीबी के मारे मरा जा रहा था। समय बीतता गया, स्थिति इतनी दर्दमयी हो गयी, कि सम्पूर्ण समाज अपनी जान की परवाह किए बिना सामाजिक विद्रोह करने लगे और हमारे कुछ समाज के नेताओं की वजह से देश आजाद गया, हमें परतन्त्रता से छुटकारा मिल गया। इसी विषय को लेकर अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों की रचना की और वे सफल भी हुए।

'तमस' उपन्यास में भी सामाजिक विद्रोह स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। इसमें हिन्दू समाज व मुस्लिम समाज व यत्र-तत्र सिक्ख समाज के विद्रोह को दर्शाया है। हिन्दू समाज मुस्लिम लोगों का विद्रोह करते हैं, तो मुस्लिम समाज हिन्दू लोगों का विद्रोह करते हैं। दोनों ही एक-दूसरे से असन्तुष्ट नजर आते हैं। उनके बीच राजनेताओं की वजह से पनपी गलतफहमियों

ने सामाजिक विद्रोह का रूप ले लिया। बडे लोगों ने चालाकी से नत्थू जैसे गरीब इन्सान से एक सुअर मरवाकर किसी के द्वारा मस्जिद की सीढियों पर फिकवा दिया, बस फिर क्या था, मुस्लिम समाज क्रोधित हो गया और फिर उन्होंने गायों को मारकाट कर मन्दिरों के सामने फिकवा दिया। दोनों ही सूरत में दोनों ही समाज बस गलतफहमियों के शिकार हो गए है। रिचर्ड अपनी पत्नी लीजा से बातें कर रहें हैं, तभी शहर की स्थिति के बारे में खबर आती है, बस इसी बारे में लीजा व रिचर्ड बातें कर रहे हैं। लीजा रिचर्ड से पूछ रही है तो रिचर्ड जवाब में कह रहे हैं कि –

> **''उसने इतना भर लिखा है कि शहर में थोडा तनाव पाया जाता है, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच। मगर यह कोई नई बात नहीं है। हिन्दुस्तान में आजकल जगह–जगह यह तनाव पाया जाता है।''**
>
> **''फिर तुम क्या करोगे रिचर्ड ?''**
>
> **''मुझे क्या करना चाहिए, लीजा ? मैं शासन करूँगा, और क्या करुँगा ?''**
>
> **''तुम फिर मजाक करने लगे, रिचर्ड ?''**
>
> **मैं मजाक नहीं कर रहा। अगर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच तनाव पाया जाता है तो मैं क्या कर सकता हूँ ?''**
>
> **''तुम उनका झगडा निपटाओगे नहीं ?''**
>
> **रिचर्ड मुसकरा दिया और कॉफी का घूँट भरकर सहज भाव से बोलाः ''मैं उनसे कहूँगा तुम्हारे धर्म के मामले तुम्हारे निजी मामले हैं; इन्हें तुम्हे खुद सुलझाना चाहिए । सरकार तुम्हारी मदद करने के लिए पूरी तरह से तैयार है।''** (*तमस , पृ. ४७*)

अतः इस समस्त प्रसंग में आपने देखा, कि अंग्रेजी सरकार के कारिन्दे सिर्फ शासन करना जानते हैं। अपनी जनता के झगडों मे कतई पडना नहीं चाहते हैं। नेताओं के ऐसे रवैये से ही सामाजिक विद्रोह पर कोई लगाम न होने से दंगे ज्यादा फैलते हैं। उन्हें जनता के दुख दर्द से कोई मतलब नहीं बल्कि वे ऐसी स्थिति का फायदा ओर उठाना चाहते हैं। 'साहनी जी' ने *'तमस'* उपन्यास में कुछ ऐसे मसलें पाठक के सामने प्रस्तुत किए है, कि वे जनता को झकझोर कर रख देते हैं। शहर में दंगा फैलने के पश्चात् अमन व शन्ति बनाए रखने के लिए ब्रिटिश

सरकार के नुमाइन्दे रिचर्ड के पास शहर के कुछ प्रमुख नेता पहुँच जाते हैं और रिचर्ड से कहते हैं, कि शहर की स्थिति काफी खराब है, यहाँ फौरन ही कारवाई करनी होगी, जिससे कि स्थिति काबू में आ जाए। बख्शीजी का मानना है, कि अगर ऐसा नहीं हुआ तो, इतनी मौतें होगी, कि आसमान मैं सिर्फ चीलें ही दिखाई पडेगी। रिचर्ड का मानना है, कि ब्रिटिश सरकार तो पहले से ही भारतीय लोगों के लिए बदनाम सरकार है, अत: वे सभी लोग हम पर बिलकुल भी यकीन नहीं करेगें। फिर भी अमन व चैन के लिए हम जो भी कर सकते हैं, वो करने के लिए हम तैयार है। यहाँ पर बख्शीजी रिचर्ड को सुझाव दे रहे हैं, कि –

> **"अगर शहर में पुलिस गस्त करने लगे, जगह–जगह फौज की चौकियाँ बिठा दी जाये तो दंगा–फसाद नहीं होगा, स्थिति काबू में आ जायेगी।"** *(तमस , पृ .७७)*

बख्शीजी के अनुसार जो सामाजीक विद्रोह यहाँ हो रहा है, इसको पुलिस द्वारा कम किया जा सकता है। जगह–जगह पुलिस के लोग तैनात कर दिए जाने पर स्थिति काबू में आ जायेगी । इस पर रिचर्ड ने कहा कि –

> **"सरकार अपनी ओर से जो कारवाई कर सकती है, जरूर करेगी रिचर्ड ने आश्वस्त के स्वर में कहा लेकिन आप लोग शहर के नेता हैं, लोग आपकी बात ध्यान से सुनेंगे। आपको चाहिए कि आप मिलकर लोगों से अपील करें कि अमन कायम रखेंगे।"** *(तमस , पृ .७७)*

अत: रिचर्ड का भी यही मानना है, कि शहर के मुस्लिम नेता, सिक्ख नेता व हिन्दू नेताओं के द्वारा इस सामाजिक विद्रोह को शान्त किया जाए, तो ज्यादा कारगर साबित होगा। क्योंकि जनता अंग्रेजी सरकार के शुरू से ही खिलाफ है, अत: वह उसकी बात आसानी से तो मानेगी नहीं। अगर ताकत दिखाई गई, तो सब चुप तो हो जायेगें, किन्तु उनके दिलों में बदले की आग और भडक उठेगी। अत: उस शहर के जो भी छोटे–छोटे नेता गण है, वे सभी मिलकर अपनी जनता की गलतफहमी से अपनी इस लडाई को समाप्त कर सकते हैं। सभी अपने–अपने लोगों से शान्ति की अपील करें और उन्हें इन दंगो से होने वाले विनाश के बारे में अवगत करा दे, जिससे की आम जनता सब समझ कर यह सब बन्द कर दे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेको सामाजिक परिवर्तन हुए, जिससे समाज में रहने वाले लोग अपना भला-बुरा अच्छे से समझने लगे। समाज में धीरे-धीरे राजनीतिक दलों की दखल अन्दाजी शुरू होने लगी। जिससे समाज राजनीतिक दलों का चरागाह बन गया। राजनेता अपने हितों की पूर्ति हेतू समाज का फायदा उठाने लगे। समाज के लोग पहले तो उनके दावों के बहकावे में आ गए, किन्तु बाद में सब स्पष्ट तौर पर समझ गए, कि वे सिर्फ अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए उनका उपयोग कर रहे हैं और सभी समाज के लोगों ने एकत्र होकर सामाजिक विद्रोह का आगाज कर दिया। 'अमृतलाल नागर' के उपन्यासों में भी मुख्य रूप से पुरानी समाज व्यवस्था के बीच होने वाले टकराव व उसके टूटने और बदल जाने का चित्रण किया है। पढे लिखे लोग और मध्यवर्ग के पढे लिखे लोगों की चल रही समस्याओं, रूढियों में जकडे संस्कारों, व आस्था के संकट का समाज पर प्रभाव का चित्रण भी किया गया है। जब चुनाव होते हैं, राजनीतिक दलों के वायदे सभी को पहले-पहल तो बहुत लुभावने लगते हैं, किन्तु जब वे जीत जाते हैं, तो फिर उनके वायदे धरे के धरे ही रह जाते हैं। समाज की मन:स्थिति टूट सी जाती है। राजनीतिक दलों की आपसी खीचतान जिसमें की आम आदमी पीस कर रह जाता है। पुलिस की धाँधली भी सामाजिक विद्रोह का एक प्रमुख कारण बन जाती है, क्योकि पुलिस भी आम जनता का साथ न देकर राजनेताओं के हुक्म पर चलती है। इसमें न्याय न होकर कभी-कभी समाज के उपर अन्याय कर बैठती है, क्योंकि उन्हें अपनी नौकरी समाज से ज्यादा प्यारी होती है।

भारतीय समाज की विडम्बनाओं और समाज में उत्पन्न विकृतियों का अंकन आजादी के पश्चात् के उपन्यासों का प्रमुख विषय रहा है। 'श्री लाल शुक्ल' के उपन्यास *'रागदरबारी'* में भी राजनीतिक व सामाजिक विद्रोह का अंकन किया है। इसमें समाज व देश के उन नेताओं का वर्णन किया है, जो बडे ही चालाक स्वार्थी, गाँवों के विकास के सबसे बडे दुश्मन और समाज के सभी प्रकार के नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों के दुश्मन थे। ऊपर से सन्त दिखने वाले पर भीतर से शैतान नेता समाज के विद्रोह का प्रमुख कारण बनते हैं। अत: हम कह सकते हैं, कि सामाजिक जनता ने मिलकर इन बुराईयों के प्रति खुलकर विद्रोह किया।

३.२.२ आर्थिक विद्रोह

१९७० ई. के पश्चात् इस देश में अनेक विद्रोहों ने जन्म लिया, जिसमें आर्थिक विद्रोह भी प्रमुख हैं। देश स्वतन्त्र होने के पश्चात् देश की माली हालत कुछ ठीक नहीं थी। शासन व्यवस्था भी चलानी थी, जिसके लिए भी आर्थिक सम्पत्ति की जरूरत महसूस हुई। हमारे देश के पास पहले जितनी भी धन-दौलत थी, वो पहले तो मुस्लिम आक्रमणकारी ले गए और तत्पश्चात बची-खुची धन दौलत ब्रिट्रिश शासनकारी अपने साथ ले गए। सोने की चिडियाँ कहलाने वाले देश पर आर्थिक संकट मंडरा रहा था। जिसे दूर करना बहुत जरूरी था, नहीं किया गया तो जनता अपनी जरूरतें न पूरी कर पाने की वजह से मर जायेंगी। 'रामदरश मिश्र' ने अपने उपन्यासों में आर्थिक तंगी के कारण उपजे विद्रोह को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। उनके उपन्यास *'दूसरा घर'* (१९८६) का विषय आर्थिक विद्रोह ही है। इसमें गरीबी और भुख की वजह से उत्तर प्रदेश की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा गुजरात व महाराष्ट्र के नगरों में अपनी जीविका की तलाश में जाता है और फिर वही रह जाता है। वहाँ के कारखानों में अधिकांश मजदूर यहीं से आये होते हैं। इनमें से कुछ तो फुटपाथ पर चाय बेचने का काम प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे कि उनकी पेट की भुख शान्त हो सकें। कुछ लोग होटलों में साफ-सफाई अर्थात् चौका बर्तन का काम करते हैं, तो कुछ घरों में काम करते हुए दिखाई पडते हैं। ये दूर से आने वाले प्रवासी अपनी अलग-अलग विशेषताओं के कारण तथा अपनी जीवन-शैली, आचार विचार व आर्थिक स्थिति के कारण एक लघु उत्तर-भारत का चित्र पेश करते हैं। इस उपन्यास में इन प्रवासियों के आर्थिक जीवन का सच प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'हिमांशु जोशी' ने भी अपने अपने उपन्यासों में गरीबी, अन्धविश्वास व आर्थिक विपन्नता को अपना प्रमुख विषय बनाया है। उनके उपन्यास *'अरण्य'* (१९७३) में पहाडी जीवन के लोगों की ऐसी कथा कहीं है, जो गरीबी, अशिक्षा तथा अन्धविश्वास से भरी हुई है। उच्चवर्ग उसकी गरीबी का उपहास करते हैं। वहाँ के लोगों में रूपये-पैसे का अभाव है, दरिद्रता उनके आँगन में खेलती है। वहाँ के प्रमुख पटवारी व प्रधान उनका आर्थिक रूप से शोषण कर रहे हैं। इन सबके शोषण से उनका जीवन नरक के समान बन गया है। उन्हें दो वक्त की रोटी के लिए की तरसना पडता है। जो भी मजदूरी करके कमाते है, वो वहाँ के प्रधान लोग वसूल कर लेते हैं। बचे हुए हिस्से में भी एक जून तो कभी एक दो जून की रोटी ही नसीब होती है। ऐसी

दयनीय स्थिति में उनका विद्रोह करना सार्थक है। आखिर कब तक वो अपनी ऐसी जिन्दगी जियेंगी। उनकी आने वाली पीढियों भी क्या हमेंशा ऐसे ही जीयेंगी? बस यही सब सवाल उनके जेहन में आते हैं और वे विद्रोह कर उठते हैं। इसी तरह अन्त तक उनका गरीबी से आर्थिक विद्रोह चलता रहता है।

'योगेश गुप्त' के उपन्यासों में भी अधिकतर मध्यम वर्ग के परिवारों को गरीबी से जुझते हुए चित्रण किया गया है। मध्यम वर्ग के परिवारों में अधिकतर आय कम व खाने वाले अधिक होते हैं। कभी-कभी तो एक आदमी के कन्धे पर ही पूरे परिवार का भरण-पोषण करने की जिम्मेदारी होती है। उस स्थिति में अचानक अगर कोई बडा खर्चा आ जाए, तो उन्हें इधर-उधर से पैसे जुटाने पडते हैं और फिर उधार का कर्जा उनकी चिन्ता का प्रमुख विषय बन जाता है। उस आर्थिक तंगी के चलते पूरा परिवार तनाव से गुजरने लगता है। अनेक परिवारों के विघटन में आर्थिक तंगी का बहुत बडा हाथ होता है। 'योगेश गुप्त' के उपन्यास *'उनका फैसला'* (१९७७) में कुछ ऐसा ही चित्रण मिलता है। परिवार के सभी लोग पारिवारिक झगडे करने लगते हैं और धीरे-धीरे आर्थिक तंगी परिवार के विघटन का प्रमुख कारण बन जाती है। गरीबी से तंग पति-पत्नी एक दूसरे पर अविश्वास सन्देह, उपेक्षा और घृणा करने लगते हैं। आर्थिक दबाव उनके ऊपर हावी हो जाता है। उनके वैवाहिक जीवन में खटास आने लग जाती है और फिर दोनों के रिश्ते में दरार आ जाती है। इसी आर्थिक विद्रोह को 'योगेश गुप्त' ने अपने इस उपन्यास में दर्शाने का बखूबी प्रयत्न किया है।

१९७८ ई. में 'रमेशचन्द्र शाह' का प्रमुख उपन्यास *'गोबर गणेश'* प्रकाशित हुआ। *'गोबर गणेश'* का प्रमुख विषय लोगों की आकांक्षाओं और सपनों को गरीबी के कारण बनने व ध्वस्त होने की कहानी है। *'गोबर गणेश'* एक ऐसे परिवार की कहानी है। जहाँ सपने पाले जाते हैं, सीचें जाते हैं, पर उन सपनों का अन्त टूटन व निराशा में होता है। उनके जो भी स्वयं के बनाये आदर्श व नियम होते हैं, वो सब दम तोडते हुए नजर आते हैं। उनका विश्वास तथा आस्था सब समय की स्थितियों के आगे उनसे टकराकर चूर-चूर हो जाता है। आदमी और आर्थिक तंगी की टकराहट और अंत में आदमी की बेहाली व उसका आर्थिक विद्रोह साफ दिखलाई पडता है। उपन्यास के तीन प्रमुख पात्र है, जिसमें विनायक, सरोज और जगत काका की कहानी के द्वारा आर्थिक विद्रोह को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में पूरी कहानी विनायक के चारों तरफ ही घूमती है। विनायक की चेतना अर्थात् समस्त घटना उसकी नीद्रा में आये सपनों में घटित होती

है। इसमें उसने जो समय व्यतीत कर लिया अर्थात् जीवन-यापन कर लिया। उस भोगे हुए काल की कहानी है। इस कहानी में एक मध्यमवर्गीय परिवार के टूटने की कहानी तो है, ही साथ में एक संवेदनशील व्यक्ति के जीवन में गरीबी की वजह से पीडा का दस्तावेज भी हो जाता है। विनायक एक परिवार का प्रमुख पात्र है, जहाँ घोर आर्थिक संघर्ष है और जिन्दगी में सफलता की एकमात्र कसौटी आर्थिक मोर्चे पर सफल होना है। जगन काका पढे-लिखे, चरित्रवान, आदर्शवादी, देशभक्त, विवेकशील व्यक्ति इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते बल्कि अन्त में टूट जाते हैं।

बीसवीं शताब्दी में 'श्रवण कुमार गोस्वामी' एक सफल उपन्यासकार के रूप में उभरे। उनके उपन्यास *'सेतु'* (१९८१), *'भारत बनाम इंडिया'* (१९८३), *'दर्पण झूठ ना बोले'* (१९८३), *'राहु-केतु'* (१९८४), *'मेरे मरने के बाद'* (१९८५), *'चक्रव्यूह'* (१९८८) आदि प्रकाशित हुए। इनके सभी उपन्यासों में हमें भारतीय समाज में फैले हुए आर्थिक व राजनीतिक भ्रष्टाचार का चित्रण देखने को मिलता है। भारत बनाम इंडिया तथा दर्पण झूठ ना बोले उपन्यास में 'गोस्वामी जी' ने प्रतीकों, रूपकों के द्वारा समकालीन यर्थाथ व आर्थिक बेहाली के विविध पक्षों का उद्घाटन और उन पर व्यंग्य किया गया है। इनमें उपन्यासकार ने बडे ही तीखे ढंग से समकालीन गरीबी के यर्थाथ का अंकन किया है।

'भारत बनाम इंडिया' उपन्यास में पात्रों का प्रतीक रूप में उपयोग करते हुए समकाली भारत की गरीबी की उस पीडा को प्रस्तुत किया गया है, जिसे आजादी के पश्चात् गाँव और नगरवासी भोग रहे हैं। गाँवों में फैली हुई छुआछूत, अन्धविश्वास, लूटपाट, शोषण, भ्रष्टाचार, धाँधली आदि का यर्थाथ रूप आर्थिक विद्रोह के रूप में हमारे सामने आता है। *'दर्पण झूठ ना बोले'* उपन्यास में भारतीय समाज में व्याप्त गरीबी व आर्थिक राजनीतिक भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। किस तरह एक आम आदमी गरीबी की वजह से बेहाल होकर बिखर जाता है और ऊपर से राजनीतिक नेतागण उसको मार ही डालते हैं, उसकी इसी पीडा का अंकन इस उपन्यास में किया गया है।

'गोस्वामी जी' के अन्य उपन्यास *'मेरे मरने के बाद में'* आज के हिन्दी लेखकों की नियति का अंकन किया गया है। इस उपन्यास में जहाँ स्वतन्त्रचेतना और विद्रोही लेखकों के अपने लेखन के पुरस्कार के रूप में गरीबी, बेहाली, उपेक्षा और अपमान का जीवन बसर करना

पडता है। जो भी लेखक स्वतन्त्र रूप से उपन्यास लिखते हैं और उन उपन्यासों में विद्रोही स्थिति को अधिक सामने लाते हैं, तो उन्हें इन सब के बदले में हमारे समाजवासियों से वाहवाही के बदले जिल्लत सहनी पडती है। लेखक स्वयं बदहाली की जिन्दगी जीने लगता है, किन्तु गरीबी से लडने हेतू हमेशा अपने लेखन में आर्थिक विद्रोह का वर्णन करता है।

'सुरेन्द्र वर्मा' के उपन्यास *'अँधेरे से परे'* और उसके कुछ बाद *'बम्बई भित्तिलेख'* सन् १९८० ई. में प्रकाशित हुआ। *'बम्बई भित्तिलेख'* उपन्यास कोई अधिक सफलता हासिल नहीं कर सका, किन्तु *'अँधेरे से परे'* उपन्यास ने काफी सफलता अर्जित की। इस उपन्यास में हमें आर्थिक विद्रोह की झलक देखने को मिलती है। उपन्यास में पाठक को सर्व प्रथम रंगमंच और सिने संसार का, आर्थिक रूप से तंगी का, इतना विश्वसनीय, समृद्ध व संवेदना से भरा चित्र देखने और अनुभव करने को मिलता है। इस उपन्यास के कथा संसार में कलाकार को गरीबी के साथ नारी के संघर्ष की कथा भी गहन संजीदगी और संयम के साथ पेश की गयी है। कलाकर के रूप में वर्षा, हर्ष, चतुर्भुज आदि के बीच में हुए संघर्ष की कहानी है। वर्षा पात्र का चरित्र एक मध्यवर्गीय रूढिवादी ब्राह्मण परिवार की लडकी के यशोदा पाण्डेय से सिनेमा–तारिका वर्षा वशिष्ट तक की जीवन यात्रा तथा एक स्त्री का आर्थिक संघर्ष और उसके प्रति विद्रोह का असाधारण उदाहरण है। वर्षा एक महत्वाकांक्षी लडकी है, जो परम्परागत व्यवस्था की सारी संहिताओं को अपने पैरों तले रौंदती और जटिलताओं को पार करती हुई आर्थिक आत्मनिर्भरता और शान्ति हासिल करती है। उसका संघर्ष जितना बाहर से है और व्यवस्था के विरोध में है उतना ही निजी और आन्तरिक भी है। वह बिनब्याहीं माँ का उतरदायित्व जिस गर्व से निभाती है, वह तारीफ के काबिल है। अपनी दरिद्रता को मिटा डालने के लिए वह समाज की कोई भी बाधा को स्वीकार कर लेती है। अतः इस प्रकार यशोदा पांडेय का वर्षा वशिष्ट में रूपान्तरण मध्यवर्गीय भारतीय नारी के अत्याधुनिक नारी में रूपान्तरण की विश्वसनीय कहानी है, जिसके अन्त में आर्थिक विद्रोह रहता है।

१९७४ ई. में 'हर गुलालजी' का एक उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसका नाम *'भीतरा कुआँ'* है। इस उपन्यास का कथ्य संसार उत्तर प्रदेश के बुलन्द शहर के अँचल पर आधारित है। यह उपन्यास आँचलिक उपन्यासों की श्रेणी में आता है। इस उपन्यास के अन्दर एक पात्र नहीं है बल्कि, ढेर सारे पात्रों का समूह एक साथ है, जिसके माध्यम से उस अँचल की प्रथाओं, रीतिरिवाजों, अन्धविश्वासों, गरीबी आदि का चित्रण किया गया है। इन सभी समस्याओं के

साथ-साथ बदलती ग्राम चेतना का उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में गाँव की दो शक्तियों का द्वन्द्व बहुत विश्वसनीयता के साथ चित्रित किया गया है। एक वर्ग तो गाँव के मुखिया और उसके समर्थन करने वालो का है, जो गाँव की स्थिति में कोई भी बाहरी या फिर आन्तिरिक परिवर्तन नहीं होने देना चाहता है। वह चाहता है, कि गाँव में सभी लोग निर्धन तथा साधन रहित रहे, ताकि वह उन अबोध व असहाय ग्रामीणों का शोषण इसी तरह करता रहे। इसके विपरीत गाँव का दूसरा वर्ग परिवर्तन की आशा रखता है, ताकि वह अपनी आर्थिक स्थिति व सोच में बदलाव ला सकें। इस वर्ग में अधिकांश नवयुवक भाग लेते हैं। वे अपने गाँव में आर्थिक व सामाजिक बदलाव भी लाना चाहते हैं, ताकि गाँव के ज़मीदारों से उन्हें शोषन नहीं सहना पडें। उपन्यासकार ने करौरा गाँव के संघर्ष समस्याओं और उन समस्याओं से जूझते उनके चरित्रों के सुख-दुख, आशा-निराशा, हँसी-खुशी आदि का सजीव अंकन किया है। इसमें पात्रों की मदद से नये और स्वस्थ सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वालो में धन्नो, छिद्दा महाराज और पंडित रामलाल आदि सजीव व्र जीवन्त पात्रों की रचना की है। इस दोनों वर्गो के संघर्ष में गाँव का निरन्तर टूटन व उसमें व्याप्त आर्थिक विद्रोह का उपन्यासकार ने गहन संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

'धर्मेन्द्र गुप्त' के उपन्यासों में भी हमें आर्थिक विद्रोह की झलक देखने को मिलती है। सन् १९७८ ई. में 'धर्मेन्द्र गुप्तजी' का *'नगर पुत्र हँसता है'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। जो महानगरीय जीवन की विसंगतियों तथा गाँव से महानगर में आए छुटभैये पढे लिखे लोगो के भटकाव तथा आर्थिक तंगी से जूझते लोगों की कहानी है। उपन्यास में एक केन्द्रीय पात्र है, जिसका नाम गुणाकर है, जो पेशे से एक पत्रकार है। गुणाकर की भटकन भरी गरीबी से झुझती अस्थिर जिन्दगी का अंकन करना ही उपन्यास की केन्द्रीय सोच है। गुणाकार को अपनी स्थिती सुधारने हेतू बार-बार अपना पेशा बदलना पडता है। कभी पत्रकार तो कभी कुछ और कभी-कभी उसे लगता है, कि जितना काम वह कर रहा है। उसे उसका वेतन भत्ता उतना नहीं दिया जा रहा है और वह उस काम को छोडकर दूसरा काम करने लगता है और सोचता है, कि शायद इस बार उसकी आर्थिक तंगी दूर हो जायेगी। किन्तु ऐसा नहीं होता है और वह निरन्तर भटकता ही रहता है। इस भटकन भरी राह में कभी तो वह कॉफी हाउस में अपने दोस्तों के साथ जाकर समकालीन राजनीति को लेकर बिना अर्थ वाली निरर्थक बहस करता है, तो कभी चाय-कॉफी और मदिरा में अपने जीवन की व्यर्थता को भुलाने की कोशिश करता है। उसका समस्त दिन

कभी-कभी तो लडकियों के साय ही कटता है, तो कभी ऐसे ही निरर्थक, यही सब गुणाकर की दिनचर्या बन गई है। ऐसा सब करने पर गरीबी उसे ओर भी घेरने लगती है। उपन्यास के अन्य पात्र भी चाय कॉफी और शराब के नशे में कुछ घडियाँ काट लेना ही उनका ध्येय बन गया है। अतः 'धमेन्द्र गुप्त' के अन्य उपन्यासों में भी मध्य वर्ग की अपनी रोजमर्रा की जरूरतों के लिए संघर्ष करते और बेहाली से परेशान होकर क्षत-विक्षत होते दिखाया गया है।

१९७९ ई. में *'पत्तों की बिरादरी'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसके उपन्यासकार 'मणि मधुकरजी' ने समाज की एक ज्वलन्त समस्या को लेकर इस उपन्यास की रचना की है। अभी का सत्य यह है, कि आर्थिक रूप से भ्रष्टाचार भारतीय शासन व्यवस्था का अनिवार्य अंग बन गया है। हमारे देश में यह समस्या बहुत वर्षों पहले से चली आ रही है, जिसमें पहले तो महाजन, प्रमुख, प्रधान और आज हमारी शासन व्यवस्था के कुछ भ्रष्ट कर्मचारी हमारे देश की जनता का लहू चूसे जा रहे हैं। जब किसी प्रान्त में बाढ आती है या फिर कहीं पर सूखा अकाल पडा होता है, तो वहाँ सरकार की तरफ से राहत शिविर स्थापित किए जाते हैं, किन्तु वहाँ भी हमारे ही कर्मचारियों द्वारा उस राहत की सामग्री का दमन कर दिया जाता है। सरकार के द्वारा दी गई ज्यादातर राहत तो आम पीडित जन के पास पहुँचती ही नहीं है। वह तो बीच रास्ते में ही खत्म कर दी जाती है। सरकारी कर्मचारी गण बस अपनी जेबे भरने में लग जाते हैं। इन्हीं सब स्थितियों के बीच आम आदमी बेघर होता चला जाता है, उसे कोई मदद् नहीं मिलती और इस स्थिति में वह या तो मुश्किलों से जी पाता है, या फिर दम तोड देता है। अर्थात् यहाँ भी भ्रष्याचार ही हावी हो जाता है। इस भ्रष्याचार के स्त्रोत संसद सदस्य, मन्त्री तथा नेता होते हैं। कैम्पों से राहत का सामान रातोरात काला बाजार में पहुँच जाता है, शरणार्थियों पर अनेक प्रकार की ज्यादतियाँ की जाती है और ठेकेदारों, प्रबन्धकों की धाँधली चलती रहती है। राजस्थान और पाकिस्तान की सीमा पर लगे हुए राहत-शिविरों की जिन्दगी का चित्रण 'मणि मधुकर जी' ने इस उपन्यास में किया है। उपन्यासकार इन शिविरों में हो रहे भ्रष्टाचार तथा आम जन की विवशता उन पर किये जाने वाले अत्याचार और उनकी आर्थिक विपन्नता से शरणार्थियों मे पैदा होने वाले विद्रोह और असन्तोष का सफल अंकन करने का प्रयास किया है। उपन्यासकार ने इस कहानी के द्वारा इस सत्य के उद्घाटन करने का भी प्रयास किया है, कि राजनीतिक व आर्थिक कारणों से हमारे देश की धरती दो भागों में बँट जाती है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र शुबो इस कृत्रिम विभाजन को अस्वीकार करता हुआ बिल्कुल सीमा पर ही अपना घर बनाता है, जिसका एक

हिस्सा भारत और दूसरा हिस्सा पाकिस्तान में है। पर व्यवस्था उसकी इस गलती को बर्दाश्त नहीं करती और उसे एक दिन गोलियों से मार दिया जाता है। अत: हम देखते हैं, कि 'मधुकर जी' ने इसमें विभाजन के साथ-साथ आर्थिक भ्रष्टाचार का भी सफल अंकन किया है।

'चन्द्रकिरण सौनरेक्सा' का उपन्यास *'वंचिता'* १९७२ ई. में प्रकाशित हुआ। 'सौनरेक्सा' सम्भवत: हिन्दी की प्रथम उपन्यास लेखिका हैं, जिन्होंने मध्यवर्गीय परिवेश में आधुनिक शिक्षा प्राप्त लडकियों का आर्थिक विद्रोह के साथ-साथ उनका विवाह, पारिवारिक जीवन में सामंजस्य की कमी और जीविकोपार्जन की समस्याओं का अंकन किया है। सामाजिक रूढियों से ग्रस्त आर्थिक तंगी से परेशान मध्यवर्गीय परिवारों की धुँआती व छटपटाती जिन्दगी वास्तविक का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। घुटन भरे जीवन से मुक्त होने तथा परम्परागत अन्धविश्वासों को तोडते हुये आज भी नारी जीविकोपार्जन के लिए निकल पडी है। *'वंचिता'* उपन्यास का प्रमुख विषय मध्यवर्ग की आर्थिक रूप से बेसहारा विधवा के जीवन का चित्रण है। समाज में विधवाओं की आर्थिक परवशता के मार्मिक चित्रण में 'सौनरेक्सा जी' को अद्भुत सफलता मिलती है। इसके साथ ही इस असहनीय स्थितियों से एक स्त्री के संघर्ष और उसके मध्यवर्गीय मानसिकता से अलग होकर शारीरिक श्रम के द्वारा अपनी आर्थिक जरूरतों को पूरा करना ही उसका प्रमुख ध्येय है। वह इसके लिंये आर्थिक विद्रोह कर बैठती है, इस आर्थिक संघर्ष को दिखाने का प्रयत्न लेखिका ने बखूबी किया है।

१९८२ ई. में 'पकंज बिष्ट' का उपन्यास *'लेकिन दरवाजा'* प्रकाशित हुआ और उसके सात वर्ष बाद १९८९ ई. में *'उस चिडियाँ'* का नाम शीर्षक उपन्यास प्रकाशित हुआ। *'लेकिन दरवाजा'* दिल्ली के समकालीन लेखक समाज के आर्थिक विद्रोह की कहानी है। आजादी के पश्चात् विकसित हिन्दी लेखक समुदाय की स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी; उसे आर्थिक बेहाली से गुजरना पड रहा था, क्योंकि उस समय पाठक गणों की कमी थी। सब अपनी जिन्दगी की उठा-पठक में लगे थे, अत: साहित्य रचना को अपनी भौतिक सुख और सुविधाओं का साधन मानने वाली लेखकीय मानसिकता का अंकन हुआ है।

३.२.३ पारिवारिक विद्रोह

स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे देश में पारिवारिक विद्रोह की झलक भी देखने को मिली। अनके सफल उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में, परिवार में हो रहे बदलाव को लेकर चर्चा का विषय बनाया है। इसी बदलाव से परिवार में विद्रोह उत्पन्न होता है। 'नरेश मेहता' के उपन्यास *'उत्तर कथा- प्रथम भाग'* (१९७९) और *'उत्तर कथा- द्वितीय भाग'* (१९८२) में पारिवारिक विद्रोह को दिखाया है। इसमें बीसवीं सदी के पूर्वाध में मालवा क्षेत्र के मध्य और उच्चमध्य वर्गीय परिवारों की बनती बिगडती स्थिति के बारे में पनपे विद्रोह को बताया गया है। इन परिवारों में करीबन सौ पात्रों की कहानी एक के बाद एक गुँथी हुई है। एक पूरी पीढी मरती है, दूसरी पीढी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है और तीसरी पीढी जवान हो रही है। 'नरेश जी' ने उत्तरकथा उपन्यास में कुलीन ब्राह्मणों के मध्यवर्ग के परिवारों को रखा हैं, जिनमें से कुछ उच्च मध्यवर्ग की सीमा में पहुँचते हैं। इस कहानी में मुख्यत: सामाजिक परिवारिक विद्रोह सम्बन्धों का अंकन है। उपन्यासकार ने मानवीय सम्बन्धों की जटिलता, उदात्तता और आजादी को विश्वसनीय और मार्मिक ढंग से पेश किया है। इसमें केन्द्रीय पात्र दुर्गा नामक स्त्री पात्र है, जिसका जीवन दुख और संघर्षपूर्ण स्थिति से गुजर रहा है। दुर्गा की संघर्षपूर्ण जीवन गाथा भारतीय नारी के पारिवारिक शोषण, अत्याचार और दमन का प्रतिनिधित्व करती है। दुर्गा जीवन के इस द्वन्द्व में अपराजित, विश्वास, धैंय, सहनशीलता, करूणा के साथ चट्टान की तरह दृढता के साथ खडी रहती है। दुर्गा भयंकर प्रहार को भी झेल लेती है। दुर्गा का व्यक्तित्व अपने समय की एक आम भारतीय बहू का व्यक्तित्व है, जिसके पारिवारिक विद्रोह का बहुत ही सशक्त चित्रण 'नरेश महेता' ने किया है। दुर्गा, जैसी स्त्री ,परिवार में हो रहे अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करती हुई, उसका डट कर विरोध करती है। उसमें पारिवारिक विद्रोह की भावना दिखाई पडती है, वह उस पारिवारिक अन्धविश्वास, धोखा, छल, प्रपंच के सामने डट कर संघर्ष करती हुई मजबुती के साथ खडी रहती है।

१९७६ ई. में 'महीप सिंह' का *'यह भी नहीं'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में बम्बई महानरीय परिवेश के पारिवारिक व सामाजिक विद्रोह की कहानी कहीं गई है। इसमें एक नारी और पुरूष के बीच में उनके असफल व तनाव से गुजरते हुए सम्बन्ध को बतलाया है, कि किस प्रकार एक शादीशुदा पति-पत्नी अपने छोटे से परिवार को अपने ही नीजी

लडाई-झगडों के कारण तोड देते हैं। महानगरों में जीने के लिए अनेक चीजों की जरूरत होती है, उसे एकत्र करना, परिवार के हर एक सदस्य में आजादी से जीने की भावना, अंहकार भाव आदि ऐसे पहलू है, जो एक परिवार के सम्बन्धों में ऐसी नफरत कर देते हैं, कि पूरा जीवन ही नरक बन जाता है। शहरों में जीवन और वहाँ की संस्कृति के हिसाब से जो परम्परागत सम्बन्ध होते थे, उन्हें दूर कर दिया और एक दूसरे पर आश्रित परिवार के लोग अलग-अलग, अपनी-अपनी नौकरी करने लगे। महानगरों में ऐसा नहीं है, कि पति नौकरी कर रहे हैं और सभी घर का काम-काज व बच्चों के भरण-पोषण तक ही सीमित है, बल्कि आज काफी संख्या में औरते अपने पति की ही तरह नौकरी-पेशा अपनाना चाहती हैं। बस पति-पत्नी नौकरियों के चलते अपने घर व अपने बच्चों की खुशीयों के लिए समय नहीं दे पाते हैं। जिससे उनमें रोज तनाव की स्थिति रहती हैं। दोनों में ही झुकना कोई नहीं चाहता, क्योंकि अगर झुके तो उनके अहं व मान-सम्मान आडें आ जाता है। आखिर दोनों ही नौकरी करते हैं, तो दोनों में ही स्वार्थ और अहंकार की भावना पारिवारिक विद्रोह का कारण बनती हैं और शनैः-शनैः उनके सम्बन्धों में दरार पडने लगती है। उनके तनावपूर्ण सम्बन्धों का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पडता है और वह उनके दुखों का कारण बन जाती है। इस उपन्यास के प्रमुख पारिवारिक पात्र सोहन और शान्ता जो पति पत्नी है, दोनों ही नौकरीपेशा हैं, दोनों में ही अंहकार की भावना है। उनके इसी आचरण से उनके बच्चे भी तनावग्रस्त होने लगते हैं। परिवार का एक आदमी दूसरे आदमी के लिए अजनबी सा महसूस होने लगता है।

१९८० ई. में 'सूर्यबाला' का *'उसके कुछ पूर्व'*, *'सुबह के इन्तजार तक'*, *'मेरे सन्धि पत्र'* प्रकाशित हुए। सुबह के इन्तजार तक उपन्यास में पारिवारिक विद्रोह दिखाई पडता है। इसमें निम्नमध्य वर्ग के पारिवारिक विघटन की कहानी को विषय वस्तु बनाया गया है। इस परिवार में एक माँ, एक पत्नी और एक पति व पुत्र के बीच में चल रहे तनाव को उजागर करने का प्रयास किया गया है। एक स्त्री अपने पुत्र के बदलते स्वभाव से परेशान है और अपना गुस्सा अपनी सास और थक कर घर आए पति पर उडेल देती है। उसका पति जब नौकरी करके शाम को थका-हारा घर लौटता है, थोडें सुकून की तलाश में, कि घर जाकर उसे अपनापन और राहत मिलेगी। किन्तु यहाँ तो सब उल्टा ही मिलता है, उसकी पत्नी गुस्से में तमतमातें हुये दरवाजे पर ही खडी थी। पति के अन्दर पैर रखते ही फुकारते हुये साँप की तरह उस पर बरस पडी। अतः गुस्सा किसी और का और उतार किसी और पर दिया जाता है। ऐसा होने के बाद उसकी सास व

पति से भी रहा नहीं जाता और फिर जोर-शोर से झगडा शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे यह सब बेकाबू हो जाता है। बच्चे भी ऐसा माहौल देख-देखकर तंग आकर ऐसे ही ढीठ हो जाते हैं। जैसे कि परिवार के अन्य सदस्य अत: 'सूर्यबाला जी' ने इस उपन्यास में पारिवारिक विद्रोह का अंकन किया है, जो हमें स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है ।

'भीष्म साहनी' के उपन्यास *'बसन्ती'* (१९८०) में भी पारिवारिक विद्रोह की भावना दिखलाई पडती है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखती है। बसन्ती के माता-पिता उसका विवाह रूपयों के लालच में आकर एक उम्र में बडे दिखने वाले दर्ज़ी बुलाकीराम के साथ करना चाहते हैं। बसन्ती के पिता चौधरी ने गरीबी के चलते लंगडे दर्ज़ी बुलाकीराम से कई बार रूपया उधार लिया है और बुलाकीराम का भी अपना स्वार्थ ये है, कि वह उसकी बेटी बसन्ती से शादी के सपने देखता है। अत: जब भी चौधरी उसे अपनी बेटी से विवाह कर देने की बात करता है, तो वह उसे रूपया दे देता है। बसन्ती के परिवार में उसके अलावा उसके पिता चौधरी की पत्नी कमला और उसके भाई-बहिन रहा करते हैं। चौधरी के घर में बसन्ती के विवाह को लेकर परिवार में विघ्रटन की स्थिति पैदा हो जाती है, क्योंकि बसन्ती को बुलाकीराम बिल्कुल भी पसन्द नहीं है। पहले भी एक बार दर्जी बारात लेकर चौधरी के घर गया तो, बसन्ती ने विवाह नहीं करने हेतू जहर पी लीया। जैसे तैसे बारात वापस चली गई और बसन्ती की भी किस्मत अच्छी थी, जो जी गई।

> **"आओ चौधरी आओ बुलाकी ने कमर सीधी करते हुए कहा, आओ बैठो, आज सुबह-सवेरे दरसन दिए और बडी फुर्ती से चबूतरें से पीढा उठाकर चौधरी के सामने रख दिया। हमारी अमानत कब मिलेगी? बुलाकी छूटते ही बोला।"**
>
> **"तेरी अमानत धरी है, जब ले ले। भले आज ही ले ले।" चौधरी ने अपनी छोटी-छोटी आँखें बुलाकी के चेहरे पर गाडते हुए जवाब दिया। ....'**
>
> **"पहले वाली बात तो नहीं होगी ना, चौधरी हम बारात सजाकर ले गए और तेरी लौंडिया ने जहर फाँक लिया। अबकी बारात का लफडा ही नहीं करेंगे, चुपचाप काम निबटा देंगे।"** (*बसन्ती, पृ . १५*)

अत: इस प्रकार हमने पढा कि चौधरी बुलाकीराम को किस प्रकार विवाह करने की बात कह रहा है। अपने परिवार की सबसे मजबूत दिवार बसन्ती को नरक की आग में झोंक रहा है। बसन्ती को परिवार का परिवेश महानगर दिल्ली में एक के बाद एक लगातार बनने वाली कालोंनियों तथा उनके आस-पास किसी भी खाली सरकारी जमीन पर बस जाते हैं। वहाँ पर अनेक छोटी-छोटी दूकाने लारियाँ लग जाती है, जिनमें नाई, धोभी, दर्ज़ी, आदि अनेक लोग अपने परिवार के साथ अस्थाई घर झुग्गी-झोंपडी का आकार ले लेते हैं, जिसमें बसन्ती का घर भी एक है। ये लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में, खुशी के मौकों में मिल-जुल कर रहने लगते हैं, तभी इनके परिवारों को हटाने हेतू सरकारी पुलिस वहाँ आ जाती है। इन सभी के लिए वह परिवार उजाड देने वाला तूफान होता है। जिसमें बसन्ती अपने परिवार से अलग हो जाती है। बस कुछ ही घण्टों में सारे परिवार बिखर जाते हैं, सब उजड जाता है, सब तबाह हो जाता है। सबकी घडकन इन बस्तियों के परिवारों में ही बसती है , वो बर्बाद तो सब बर्बाद। बसन्ती को अपने घर मे पनाह देने वाले सुरी साहिब, उसके पिता चौधरी के साथ बातचीत करते हैं। उसका पिता उसे ले जाने की बात करता है। तो सूरी साहिब बसन्ती से कुछ इस प्रकार करते हैं -

> **"अपनी इस हालत को देखते हुए तुम्हें अपने घरवालों के पास ही रहना चाहिए। अच्छे हैं, बुरे हैं, जैसे भी हैं, हैं तो तेरे अपने। सूरी साहिब ने बसन्ती को समझाते हुए कहा।"** (*बसन्ती, पृ. १११*)

अत: इस प्रकार बसन्ती अपने पिता की बात मानकर दर्जी बुलाकी से विवाह करने को राजी हो जाती है, ताकि वह उसके आने वाले बच्चें का भी भरण-पोषण कर सकें और उसे पिता का नाम दे सकें। अत: हमने देखा की इस उपन्यास में परिवारों के टूटन की कहानी स्पष्ट दिखाई देती है।

'मृदुला गर्ग' के उपन्यास *'उसके हिस्से की धूप'* (१९७५) में एक आधुनिक स्त्री के प्यार को अपने ही परिवार मे संघर्ष करते दिखाया गया है। वह अपने ही घर में अपने प्यार को तलाशती रहती है। उसका विवाह पराम्पराओं के हिसाब से हुआ है, फिर भी उसका पति उसके प्रति उदासीन भाव से रहता है। अत: वह भी उसकी इस बेचैनी से थककर, भावुक होकर, प्रेम और विवाह के बीच नये सम्बन्ध स्थापित करती है। बाद में वह अपने पहले पति की और आकृष्ट हो जाती है। बस यहीं से पत्नी-पति के बीच खटास पैदा होने लगती है। पत्नी अपने

पति की उदासीनता से परेशान है, तो पति उसके पहले पति के साथ सम्बन्धों को लेकर दुखी है। इसकी केन्द्रीय पात्र मनीषा के मनोंभावों, अन्तर्द्वन्द्वों, सोचों और प्रतिक्रियाओं को ही पारिवारिक विद्रोह का कारण समझा गया।

'योगेश गुप्त' का *'उनका फैसला'* उपन्यास १९२७ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में 'गुप्तजी' ने पारिवारिक व समाज के प्रति विद्रोह दिखाने का भरसक प्रयास किया है। इसमें गरीब और एक मध्यम वर्ग के परिवार में एक दूसरे के प्रति अविश्वास, एक दूसरे पर सन्देह, उपेक्षा और घृणा को दिखाया गया है। इसमें मध्यम वर्ग के परिवारों में उत्पन्न तनाव को बतलाया है। इसके प्रमुख पात्र सुरेश को जेल में पकड लिया जाता है, क्योंकि उसने कत्ल जैसा घिनौना जुर्म किया है ।

> **"तौ सुरेश को इसी महीनें की सौलह तारीख को फाँसी दी जायेगी। आज सात तारीख है। नौ दिन और हैं। नौ दिन वह जेल की कोठरी में बैठकर अपने नाखूनों से धरती खोदेगा। सुरेश के साथ किसी की सहानुभूति भी तो नहीं है। उसने अपराध ही ऐसा किया है। अपनी पत्नी और चार बच्चों की हत्या। ऐसे में कौन उससे सहानुभूति दिखाकर अपनी ही नजरों में गिरेगा। सिर्फ एक दोस्त बचा है उसका हरिमोहन। वहीं उसके पास आता जाता रहा है। उसके मुकदमें की पेरवी भी वही करता रहा। पर उसे सुरेश का साथ देना कभी अच्छा नहीं लगा। इतने जधन्य अपराधी को बचाने की कोशिश करना स्वयं में कम जधन्य अपराध नहीं है।"**
> *(उनका फैसला, पृ .३७)*

इसमें सुरेश नाम के पात्र ने अपनी पत्नी व बच्चों का कत्ल कर दिया है, अत: जनता की नजरों में यह एक बहुत बडा पाप है। इसीलिए उसके पास कोई भी मिलने नहीं जाता है, बस उसका मित्र हरिमोहन ही उसकी हमेशा खैर-खबर लेता रहता है। अत: इस उपन्यास की प्रमुख कहानी में पात्र हरिमोहन और सुरेश दोनों एक ही ऑफिस में काम करते हैं और अच्छे दोस्त भी है। उनकी पत्नी सरिता और शोभा भी आपस में अच्छी दोस्त है, एक दूसरे के सुख-दुख में साथ निभाती है। दोनों परिवार अच्छे से फल-फूल रहे होते हैं तभी सुरेश के दिमाग में शक का कीडा घर कर जाता है। उसे लगता है, कि उसकी पत्नी सरिता का किसी अन्य मर्द के साथ अनैतिक सम्बन्ध है, जो वह सहन नहीं कर पाता। सरिता और सुरेश में रोज पारिवारिक कलह

चलता रहता है, जिसका प्रभाव उनके बच्चों पर भी पडता है। सरिता सुरेश को कहती है, कि यदि पुरूष किसी अन्य स्त्री से अनैतिक सम्बन्ध बनाये तो वह उसके पौरूष में गिना जाता है और अगर एक औरत खिडकी पर भी खडी हो जाये तो उसे उसके पति द्वारा कुल्टा का नाम दे दिया जाता है और पति अगर ऐसा करे तो वह उसकी बहुत अच्छी बात है। सुरेश को सरिता की ये सब बातें करना बिल्कुल पसन्द नहीं है। सुरेश जिस ऑफिस में काम करता है, वह वहाँ का प्रमुख आदमी है, लीडरशीप के लिए चुनाव हो रहे हैं, तो सुरेश मजदूरों के दम की बात करता हुआ करता है, कि –

> **"तो भाईयो में आपसे कह रहा था कि मजदूर का असली दुश्मन मैनेजमेन्ट होता है पर सवाल है कि एक ही छत के नीचे मजदूर और मैनेजमेन्ट दोनों को काम करना होता है, फिर दुश्मनी काहे की।"** (*उनका फैसला, पृ .४२*)

अत: सुरेश यह समझाना चाहता है, कि प्यार से काम करना चाहिए। यह कम्पनी समाजवाद के प्रचार-प्रसार के लिए खोली गई है। इसके जो अखबार निकलते हैं, उसमें गरीबों की भलाई की बातें ही प्रकाशित होती हैं। कम्पनी के अफसर अक्सर यह कहते हैं, कि कम्पनी किसी एक आदमी की नहीं है, बल्कि समस्त कम्पनी परिवार है। अत: इस तरह कम्पनी में भी विद्रोह दिखलाया गया है। सुरेश एक तरह से सनकी व मानसिक रूप सी धीरे-धीरे अस्वस्थ होने लगा था। पता नहीं उसके दिमाग में तरह-तरह के शक भ्रमण करते रहते थे। वह स्वयं को कभी भी इनसे मुक्ति दिलाने में असमर्थ रहता था। उसकी पत्नी सरिता की बातें उसे चुभती थी। दिन भर ऑफिस में काम करते हुये भी उसे वही सब सुनाई पडता था, जो उसकी पत्नी द्वारा कटु वचन कहे जाते थे। बस इसी से परेशान वह सबसे अक्खडपने से ही बात करता या किसी को भी ढंग से जवाब नहीं देता था और एक दिन उसके ही हाथों, उसके परिवार का कत्ल हो जाता है। अत: हमें इस उपन्यास में पारिवारिक विद्रोह देखने को मिलता है।

अत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक उपन्यासकारों ने पारिवारिक विघटन व विद्रोह को लेकर अनेक उपन्यासों की रचना की। जिनका प्रमुख विषय आधुनिकता की दौड में प्राणी सिर्फ अपना स्वार्थ अधिक देखने लगा है, परिवार के अन्य लोगों के सुख-दुख का उसे तनिक भी आभाष नहीं होता है। वह सिर्फ अपने लिए ही जीवन जीने लगता है, ऐसे में रोज-रोज

लडाई-झगडें होने लगते हैं, जिससे की परिवार में अशान्ति का माहौल छा जाता है। आपस में विद्रोह की स्थिति पैदा हो जाती है। बस उसे ही पारिवारिक विद्रोह कहा गया है।

३.२.४ राजनीतिक विद्रोह

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन तेज हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश का शासन आम जन के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में आ गया। हमेशा से ही शक्ति भ्रष्टाचार को उत्पन्न करती है, यह एक सच है। सत्ता में आने के बाद ही कॉंग्रेस के नेता प्रतिनिधियों के दूर्बल पक्ष उभर कर सामने दिखने लगे। कॉंग्रेसी नेतागण अपनी-अपनी जेबे भरने में लगे रहे और आम जनता उनके किए गए वायदों के पूरा होने की राह देखती रहीं, किन्तु उन्हें आम जनता के लिए अब कहाँ फुर्सत थी। यद्यपि संविधान में भारत देश को समाजवादी गणतन्त्र कहा गया पर सामन्ती और पूँजीवादी शक्तियों ने राजनीति में घुस कर अप्रत्यक्ष रूप से उस पर अपना कब्जा कर लिया। कुछ आर्थिक रूप से सम्पन्न लोगों ने नेता गणों को रूपयों का लालच देकर अपनी मुठ्ठी में कर लिया। उस समय के जो कॉंग्रेसी नेतृत्व करने वाले नेतागण थे, वे इस प्रवृति पर रोक लगाने में समर्थ नहीं हो सकें और अपनी जनता के आधार को निर्बल होते देख इसके सामने घुटने टेक दिए। शनैः-शनैः संसद और विधान सभाओं में चुनाव को जीतने हेतू पैसे की जरूरत बढती चली गई और इसके साथ ही सामन्तों, जमींदारों, भूमिपतियों और पूंजीपतियों का शासन पर प्रभाव भी अत्यधिक बढता चला गया, या फिर यों कहें, कि समस्त प्रशासन इनके कब्जे में आ गया। ऐसे में आर्थिक भ्रष्टाचार में भी बढोतरी हुई। जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयवाद और इससे जुडे हुए दूर्विकारों का आगमन तो राजनीति में हुआ ही। अपनी कुर्सी बनाए रखने के लिए चरित्रहीन सांसदो को भी रिश्वत दी जाने लगी। जिन सांसदों ने हत्या जैसे जुर्म को अंजाम दिया, उन्हें भी सत्ता में आने हेतू खुली छुट दी जाने लगी। अतः अगर सही बात करे, तो आज रिश्वतखोर, तस्कर, डकैत, घोटाला करने वाले, कुर्सी का सद्उपयोग न करके दुरूपयोग करने वाले, करोडों रूपये का आयकर डकार जाने वाले सभी प्रकार के अपराधी राजनीति मे कुर्सी जमाए बैठे हैं।

अनेक उपन्यासकार जिनमें 'मन्नू भंडारी', 'यशपाल', 'मृदुला गर्ग', 'गिरिराज किशोर' आदि अनेक उपन्यासकारों ने राजनीतिक सन्दर्भ को लेकर उपन्यासों की रचना की है। आजादी के बाद राजनीतिक जीवन में आने वाली विकृतियों का 'भगवतीचरण वर्मा' ने प्रमुखता के साथ चित्रण किया है। आजादी की लडाई में गुंडागिरी शुरू करके पहले विद्यानसभा का सदस्य उसके बाद में उपमन्त्री और फिर गृहमन्त्री भी बन जाता है। देश में अनेकें तरह के तिकडम तथा धन

और गुंडाराज की शक्ति के बल पर राजनीति में खेल खेलने लगता है। देश में फैल रहे भ्रष्टाचार और राजनीतिक विद्रोह का 'भगवती चरण जी' ने प्राय: अपने सभी उपन्यासों में चित्रण किया है ।

'मन्नू भंडारी' के उपन्यास *'महाभोज'*(१९७९) में भी समकालीन राजनीतिक भ्रष्टाचार का वर्णन किया है। यह उपन्यास राजनीतिक परिवेश से सम्बद्ध उपन्यास है। इस राजनीति में फैल रही मूल्यहीनता, शैतानियत अर्थात् शैतानों जैसी हरकतें करना इन सबका सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जिस भी राजनीतिक दलों के बीच सत्ता का मिलन हुआ वे सभी भ्रष्टाचार में लिप्त थे। कॉग्रेंस के शासन में, समाजवादी शासन की स्थापना का दिखावा करने के बावजूद, पूँजीवादी और सामन्तवादी व्यवस्था ही राजनीति पर प्रभावी रही। इस देश को समाजवादी प्रजातन्त्रवादी कहना एक प्रकार का मजाक जैसा प्रतीत होने लगा था। राजनीति में धन, बाहुबल और छलप्रपंच का बोलबाला हो गया। इन सबकी आपूर्ति पूँजीवादी–सामन्तवादी शक्तियाँ मजे से करती रहीं। 'मन्नू भंडारी' ने दा साहब, सुकुल जी, पांडेय जी आपा साहब, राव आदि पात्रों के माध्यम से जो विभिन्न तरह–तरह के चेहरे लगाए, सत्ता की लडाई लडने वाले राजनीतिकर्मियों का प्रतिनिधत्व करते हैं, इसी सच्चाई का वर्णन 'मन्नू भंडारी जी' ने अपने उपन्यास *'महाभोज'*में किया है। दूसरी तरफ अगर देखे तो बिसेसर बिन्द्रा, हीरा, लोचन भैया, एस.पी. सक्सेना जैसे पात्र हैं, जो इस शासन व्यवस्था में पिसे जा रहे हैं। समकालीन राजनीति के इस घिनौने चेहरे को बेनकाब करने में 'मन्नू भंडारी' को *'महाभोज'*उपन्यास में अदभुत् सफलता मिली है। दा साहब ऊपर से सन्त दिखने वाले और अन्दर से शैतान राजनेता के रूप में प्रकट होते हैं। उनका चरित्र बहुत ही अद्‌भुत है। इस उपन्यास के द्वारा 'मन्नू भंडारी' ने यह सिद्ध कर दिया है, कि महिला उपन्यासकार भी नारी विमर्श के अलावा समकालीन सच्चाई का चित्रण शहरी संवेदनशीलता के साथ कर सकती हैं। इस प्रसंग में लखनसिंह जोरावर के बारे में बात कर रहा है। वह कह रहा है, कि जोरावर ने जो जुर्म किया है, तो सजा भी उसे भुगतनी ही पडेगी। दा साहब के साथ लखनसिंह का वार्तालाप होता है, तभी लखनसिंह दा साहब से कहता है कि :–

"और आप हैं ,कि इसी मूर्ख का पल्ला पकडे हुए हैं। मारा है गरीबों को तो भुगतने दीजिए सजा। नहीं चाहिए हमें जोरावर के वोट। अब इसके वोटें के चक्कर में हरिजनों के सारे वोट तो गए ही...... गाँव के दूसरे लोगों के वोट भी नहीं

मिलेंगे। सारा हिसाब लगाकर देख लिया है, मैंने ले डूबेगा जोरावर का साथ। माथे पर कलंक और आत्मा पर बोझ सो अलग है।'' *(महाभोज, पृ .१५)*

दा साहब ने अपनी पार्टी में लखनसिंह को उम्मीदवार के रूप में खडा किया है, दूसरी तरफ सुकुल बाबू जैसे जर्बदस्त उम्मीदवार है। पता चला कि जोरावर ने सरोहा में एक आदमी को मरवा दिया। अत: जोरावर को तो अब पुलिस पकड कर ले जायेगी, तो लखन कह रहा है, कि अगर उसने किसी गरीब को मारा है, तो उसे स्वयं को सहने दिजिए, हमें जोरावर के वोट नहीं चाहिए। गरीब के मरने से हरिजनों के सारे वोट सुकुल बाबू को चले ही गए। अब जो दूसरे गाँव के वोट है, वो भी हमें नहीं मिल पायेगें, अगर हमने जोरावर के वोट लिए तो। अत: हमें यह सब नहीं करना है, जिससे हमारे दिल में आत्मग्लानी और माथे पर दाग लग जावे। अत: हमें जोरावर जैसे राजनेता के प्रति लखनसिंह का विद्रोह देखने को मिलता है।

''देखो राव और चौधरी, राजनीति में तुम लोग अभी बच्चें हो। आदमी की पूरी पहचान भी नहीं तुमको। फिर एक क्षण रूक कर बोले, उम्र में लोचन भी कोई ज्यादा नहीं है तुमसे पर आदर्श और सिद्धान्तों की आड में राजनीतिक दाँव पेंच खेलना खूब जानता है। इसीलिए सभी सम्मान नहीं जगा पाया में उसके लिए अपने मन में।........''*(महाभोज, पृ .१५)*

इस प्रसंग में दा साहब ने लोचन, राव, चौधरी को राजनीति के बारे में एक महत्वपूर्ण बात बताने का प्रयत्न किया है। दा साहब कह रहे हैं, कि तुम लोगों ने अभी-अभी राजनीति में कदम रखा है, तुम इस दौड में नये-नये हो। लोचन अगर उम्र के हिसाब से देखें तो तुम लोगों जितना ही है, किन्तु वह कुछ बातों में तुम सभी से अलग है। वह राजनीति के आदर्श सिद्धान्त सभी अच्छे से पहचानता है, उसे कब और कैसे क्या करना है, ऐसे राजनीतिक दाँव-पेंच वह अच्छी तरह जानता है। इसीलिए मैंने कभी भी उसे एक अच्छा इंसान नहीं माना, न ही उसके लिए अपने मन में कोई सम्मान जैसे भाव जागृत कर सका। अत: हम देख रहे हैं, कि *'महाभोज'* उपन्यास पूरी तरह राजनीतिक घटनाओं से ओत प्रोत है। इसमें सभी दोनों पक्षों के द्वारा सत्ता का लालच इस कदर बढ गया है, कि दोनों ही पक्ष साम-दाम-दण्ड-भेद में से सभी नीतियाँ अपनाने को तैयार है। एक पक्ष में सुकुल बाबू चुनाव लड रहे हैं, तो दूसरी और दा साहब ने अपने सबसे नजदीकी लखनसिंह को

उम्मीदवार के तौर पर खडा किया है। किन्तु दोनों ही पक्षों द्वारा अपने समर्थकों की खरीद-फरोख्त चालू है।

'महाभोज' उपन्यास में राजनीतिक विद्रोह भँलीभाँति दिखाई पडता है। इस उपन्यास में 'मन्नू भंडारी' द्वारा यह बताया गया है, कि हमारा देश स्वतन्त्र जनतन्त्र की पद्धति के अनुसार चलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आज तक हम देखते हैं, कि इस जनतन्त्र में आम इंसान की जगह कहाँ पर है, वह तो राजनीतिक नेताओं के हाथ की कठपुतली बन कर रह गया है। राजनीति और नौकरशाही प्रमुखों ने इस समस्त लोकतन्त्र प्रणाली से सारे ताने-बाने को उलझा कर पेश किया है। वह अभी आम जनता को अपने वायदो से फाँसने का जाल बन कर रह गया है। इस फाँसने वाले जाल की सभी कडियाँ दा साहब के इशारों पर खुलती और बन्द होती है। उनकी दबादबी में इस समाज के अकुशल सिक्के समाज चला रहे हैं। अतः यह उपन्यास इतना अच्छा बन पडा है, कि नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा दिल्ली द्वारा इसका कई बार मंचन किया गया है। इस उपन्यास को पाठकों द्वारा अत्यन्त सराहा गया है। *'महाभोज'* उपन्यास में राजनीति में फैल रही मूल्यहीनता का भी बखूबी वर्णन किया है। हमारी राजनीति पूरी तरह भ्रष्टाचार में लिप्त हो गई है, उसका कोई भी पहलु भ्रष्टाचार से अछूता नहीं रह गया है। दा साहब का चरित्र इस भ्रष्ट राजनीति का एक बहुत बडा सिक्का है। उसी के इशारे पर बडें-छोटें राजनेता चला करते हैं। वो एक जगह लखनसिंह को समझाते हुए कहते हैं कि :-

> **"आवेश राजनीति का दुश्मन है। राजनीति में विवेक चाहिए। विवेक और धीरज ?"** *(महाभोज, पृ .१६)*

अर्थात राजनीति दिल का खेल नहीं, बल्कि दिमाग के खेल में शान्ति से पहले देखो और फिर जब मौका मिले तो सामने वाले पर वार करो। इसमें आवेश से तो और भी काम बिगड जाता है। दा साहब और लखन दोनों ही उनके एक पार्टी कार्यकर्ता की हरकत से शर्मिन्दा है। उसी की वजह से उन्हें जीतने में थोडी मुश्किल अवश्य होगी। उनका विरोधी सुकुल तो ऐसा भाषण देते हैं, जैसे कि आग निकल रही हो। वो अपने एक ही भाषण में सारी जनता को अपना बना लेगें। अतः इस प्रकार लखन अपनी चिन्ता दा साहब के सामने जाहिर कर रहे हैं। इस उपन्यास का हर पात्र राजनीति की चाल में इस तरह से चल रहा है, कि वह दलदल के कीचड में

धँसता हुआ जा रहा है। सबसे ज्यादा आम जनता इससे हताहत होती है। यही सब 'मन्नू भंडारी' द्वारा *'महाभोज'* में दिखाया गया है।

'गिरिराज किशोर' के उपन्यासों में भी राजनीतिक विद्रोह की झलक देखने को मिलती है। इनके उपन्यास *'जुगलबन्दी'* (१९७३) और *'ढाई घर'* (१९९१) में भी राजनीतिक ऊहापोह का वर्णन मिलता है। इसमें जमींदारों की इस पीढी का बडे पैमाने पर चित्रण हुआ है। *'जुगलबन्दी'* में इन जमींदारों की दो पीढियाँ एक साथ अपना जीवन यापन कर रही है। उनमें से एक पीढी उन जमींदारों की है, जो सम्पूर्ण तरह ब्रिट्रिश शासन के भक्त है और औपनिवेशिक शासन के समस्त तिरस्कार और जिल्लत सहन कर भी स्वयं को बदलने को तैयार नहीं है। अत: इस पीढीं के जमींदार या तो अन्त में आत्महत्या कर लेते हैं, या फिर घुट-घुट कर मर जाते हैं। दूसरी पीढीं उन जमींदारों की है, जो व्यापारिक सच्चाई को खुली आँखों से देखते ही नहीं, बल्कि उसको बदलने के लिए संघर्ष भी करती है। इस पीढी को अंग्रेजी शासन और उसके राजनीतिक नुमाइन्दों के चेहरों की सही पहचान हो चुकी है। अंग्रेजी शासन में कुछ पात्रों का तो उनसे मोहभंग हो जाता है, किन्तु फिर भी वह चुपचाप बैठकर तमाशाबीन बने रहते हैं। जबकि कुछ इसके विपरीत उठ खडे होते हैं और बगावत की राह अपना लेते हैं। बस ऐसी स्थिति ही राजनीतिक विद्रोह को जन्म देती है।

'श्री लाल शुक्ल' ने अपने अन्तिम उपन्यास *'बिस्त्रामपुर का सन्त'* (१९९८) में राजनीति में फैल रहे पाखंड का विरोध किया है। इस उपन्यास में उन राजनेताओं के प्रति विद्रोह दिखाया गया है, जो बडी सावधानी से कदम बढाते हुए कुर्सियाँ प्राप्त कर लेते हैं और किसी कारण वश जब वो कुर्सी उनसे छिन जाये तो ऊपर से सन्त-महात्मा भीतर जैसे, कि कुछ हुआ ही नहीं, की भूमिका धर लेते हैं। यह सब वे इतनी आसानी से सहन करने वाले नहीं होते हैं। अत: पर्दे के पीछे वे जी-जान लगाकर पद व अपनी कुर्सी प्राप्ति हेतू कोशिश करते हैं तथा ऊपर से शान्त रहने का नाटक करते हैं। सत्ता से दूर हो जाने पर भी उनका नाटक में रहने का अभ्यास नहीं छूटता। पर इस देश की राजनीति में फैल रहे इस पाखण्ड और छलावे का चित्रण श्री लाल शुक्ल जी ने इस उपन्यास में किया है। इसमें एक ही स्त्री पात्र के प्रति राजनेता पिता और बुद्धिजीवी बेटा दोनों ही प्रेम की दृष्टि से देखते हैं। ऐसा करते हुए तनाव नहीं सहन कर पाने के कारण पिता आत्महत्या कर लेता है। उपन्यास में भूदान आन्दोलन के नाम पर खोखलेपन, छलावा और उसकी दयनीय असफलता का चित्रण किया गया है। राजनेताओं की यादों और

चालाकियों से बनी इस कहानी में भूदान आन्दोलन और कृषि समस्या का भी चित्रण हुआ है। राजनीतिक राजपुरूषों के चरित्र की विडम्बना को प्रस्तुत करना ही '*श्री लाल शुक्ल*' का प्रमुख उद्‌देश्य है।

'शैलेश मटियानी' के उपन्यास *'सर्पगन्धा'* (१९७९) में भी हमें राजनीतिक विद्रोह देखने को मिलता है। इसमें भारतीय राजनीति के भीतर शैतान और ऊपर से सन्त दिखाई देने वाले नेताओं का वर्णन किया गया है। इन नेताओं का उदय कांग्रेस के सत्ता संचालन के बाद ही होने लगा और हिन्दी उपन्यास में उसका चित्रण होने लगा। *'सर्पगन्धा'* उपन्यास में 'शैलेश मटियानी जी' ने कल्याण ठाकुर के रूप में 'बाघ की प्रतिरूप बिल्ली' का जो चरित्र पेश किया गया है, वैसा कोई चरित्र पहले किसी हिन्दी उपन्यास में देखने को नहीं मिलता। *'सर्पगन्धा'* का प्रमुख विषय पर्वतीय क्षेत्र का दलित समाज है, जो अपने अधिकार को प्राप्त करने हेतू लडाई लड रहा है। 'मटियानी जी' ने इस संघर्ष और इससे जुडे हुए आरक्षण के सवाल पर बहुत ही विवेक और निर्भिक चित्रण का परिचय दिया है। ग्रामीणों को आरक्षण प्रदान करने जैसे तर्कपूर्ण चिन्तन को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें ठाकुर जाति से सम्बन्ध रखने वाली एक विधवा स्त्री का दलित समाज ने एक विवेकशील मास्टरजी से विवाह करना दिखाया गया है। ठाकुर जाति की विधवा तथा दलित समाज के युवक ने अपने आप को घोर मानसिक और संस्कारों की दुहाई देने वाले समाज के संघर्ष से गुजरते हुए उसका अपने को वर्गमुक्त करने का प्रयास उपन्यास के कथ्य विषय को एक नया आयाम प्रदान करता है। अर्थात् दोनों ही पात्र अपने स्वयं को वर्गमुक्त कर लेते हैं, ना ही वे ठाकुर और ना ही दलित जाति के बन्धन में बँध कर रहना चाहते हैं। इस समाज के राजनेताओं के नियमों से संघर्ष करके वे अलग रहने लगते हैं और अपना अलग सुखी संसार बसाते हैं। अतः राजनेताओं के इसी विद्रोह को 'मटियानी जी' ने दिखाने का प्रयत्न किया है।

'रामकृष्ण मिश्र' ने भी अपने उपन्यास *'दारूल सफा'* (१९८१) में समकालीन राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और दाँवपेच का विश्वसनीयता से चित्रण किया है। कुर्सी पर अधिकार जमान हेतू समकालीन राजनीति के नेता लोग तस्करी, रिश्वत, चरित्र हनन, अपहरण, हत्या जैसे किसी भी घृणामयी साधन का इस्तेमाल करने में नहीं हिचकिचाते हैं। आजादी के पश्चात् सामाजिक और नैतिक स्तर पर हुए पतन का भी उपन्यासकार ने सजीव चित्रण किया है।

आजादी के पश्चात् के उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम के सक्रिया रूप ग्रहण करने से लेकर बीसवीं सदी के अन्त तक के व्यापक राजनीतिक विद्रोह का बहुत ही विश्वसनीयता के साथ चित्रण हुआ है।

३.२.५ मानसिक विद्रोह

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार जैसी अनेक बीमारीयाँ इस प्रकार फैलने लगी जिससे आम आदमी अछूता नहीं रह सका। महानगरों की मानसिकता के सामने बदलाव की जरूरत महसूस होने लगी, क्योंकि शहरों में भी अभी लोग पुरानी मानसिकता के साथ जीवन–यापन कर रहे थे। पिछडें हुये क़ँस्बाई अँचलों के लोग भी अब अपनी मानसिकता बदलने लगे थे। ऐसा सब करने के बावजूद काले धन के बने मकान, शिक्षा संस्थाओं में जातिवाद का चलना और राजनीति पर् आधारित गुटबन्दी का बोलबाला होना, चिकित्सा और कानून के पेशे में फैली अमानवीय व्यवसायिकता, राजनीतिक स्वार्थ की उठापटक और गन्दी मानसिकता सभी को मानसिक विद्रोह करने के लिए प्रेरित करती है। आज के समाज में गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले नेताओं की भरमार है, साथ ही भोलेपन की आड लेकर चालाक और तिकडमी लोग इस प्रकार छाये हुए हैं, कि एक संवेदनशील व्यक्ति के लिए उसे झेलना मुश्किल काम है। इसके चलते वह मानसिक विद्रोह से ग्रसित हो जाता है।

'मोहन राकेश' के उपन्यास *'अन्तराल'* (१९७२) में हमें मानसिक विद्रोह दिखाई पडता है। *'अन्तराल'* उपन्यास में एक स्त्री और पुरूष के मध्य उत्पन्न हो जाने वाली दूरी और उससे मानसिक स्तर पर जूझते रहने की ही कहानी कहीं गई है। 'मोहन राकेश' ने सम्बन्धों सही अर्थ खोजने का प्रयास इस उपन्यास में किया है। हमसाथी की मृत्यु के पश्चात् जीवन में खालीपन की मन:स्थिति पैदा हो जाती है। वह स्वयं को बहुत ही अकेला समझने लगती है, अन्दर ही अन्दर उसका मन कुढता रहता है। किन्तु कुछ समय पश्चात् एक दूसरा पुरूष उसके जीवन में आता है। वह भी उसका और अपना खालीपन भरने हेतू कदम उठाने लगती है और प्रेमिका तो बन जाती हैं, किन्तु उसकी पत्नी का दर्जा वह नहीं पा सकीं, बस वहीं खालीपन फिर से उसे खाने लगा। उसके मन में पत्नी न बन पाने का स्थान बैचेनी उत्पन्न करने लगा। वे एक–दूसरे के पास आना भी चाहते हैं, किन्तु कोई चीज उन्हें पास आने से रोक देती है। वह इस अँधेरे से निकलकर सतह को पाने के लिए छटपटाती रहती है, किन्तु उसे सतह पर आने का कोई किनारा नजर नही आता। इसी मानसिक ऊहापोह में उसका जीवन मानसिक विद्रोह कर बैठता है।

'निर्मल वर्मा' के उपन्यास *'रात का रिपोर्टर'* (१९८९) में भी मानसिक विद्रोह दिखाई देता है। इसमें आतंक, अविश्वास, रहस्य और उससे उत्पन्न मानसिक यातना की भावदशाओं का

चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। *'रात का रिपोर्टर'* उपन्यास का कथ्य विषय इन्दिरा गाँधी द्वारा लगायी गई आपातकालीन स्थिति है। उपन्यास के केन्द्रीय पात्र रिशि आपातकालीन परिस्थितियों से मानसिक तौर पर इतना भयभीत हो गया है, कि वह अन्दर ही अन्दर डरने लगा है। वह शंकालु तरह का इन्सान होते हुये अपने ही भय से डरा हुआ सा प्रतीत होता है। साथ ही रिशि अपने ही अविश्वास से पीडित भी दिखाई पडता है। उसके चारों तरफ तम का साम्राज्य फैला हुआ है। रात अँधेरी है, तो संकेत के तौर पर आपातकाल के आतंक और अविश्वासपूर्ण वातावरण की तरफ इशारा करती है। उपन्यासकार ने रिशि की नींद को छेडें बिना ही आतंक को मानव के लिए संकेत के रूप में देखते हैं। एक रहस्यमय रूप अपरिभाषित भय पूरे उपन्यास में व्याप्त है। रिशि इन सभी के साथ-साथ अपनी पारिवारिक परिस्थिति से उत्पन्न मनोंयातना से भी परेशान दिखाई पडते हैं। उसके मन में इन्हीं मानसिक विचारों के प्रति विद्रोह करते हुए अन्त में दिखलाया गया है।

'देवेश ठाकुर' के उपन्यास *'प्रिय शबनम'* (१९७८) उपन्यास में भी उन्होंने निम्न मध्य वर्ग के युवक की मानसिकता का वर्णन किया है।जो युवक पढा लिखा होने के बावजूद अपनी कुंठाओं से अलग नही होता है। उस केन्द्रीय पात्र युवक के मध्यवर्गीय संस्कार उसे कभी भी कोई क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाने देते हैं। वह कभी-कभी उन्हें बदलने का प्रयत्न करना चाहता है, किन्तु उसकी पारिवारिक सोच उसे यह सब करने से मना कर देती है। वह किसी अन्य वर्ग की युवती से प्रेम करने लगता है, वह चाहता है, कि उसी युवती से विवाह भी करे, किन्तु वर्ग भेद की समस्या जब सामने आती है, वह चुपचाप खडा का खडा रह जाता है। वह सिर्फ अपनी प्रेमिका को इसीलिए नहीं पा सका क्योंकि उसके संस्कार रूढियों में ग्रस्त है, उसके परिवार के समस्त लोग उसमें बुरी तरह से जकडे हैं। और इस उपन्यास का प्रमुख पात्र इसी मनोंदशा में चिन्ता करता रहता है। स्वयं से ही विद्रोह करता रहता है।

'मनहर चौहान' के उपन्यास *'समर्पण'* में भी हमें मानसिक विद्रोह दिखाई पडता है। इसमें एक प्रमुख स्त्री पात्र रेणु के इर्द-गिर्द कहानी घूमती है। रेणु की एक बेटी है, बेबी जिसे वह बहुत प्यार करती है। बेबी प्रवीण की बेटी है, किन्तु रेणु किसी कारण वश देवेश से शादी कर लेती है। देवेश को जब पता चलता है, कि बेबी उसकी नहीं, प्रवीण की बेटी है, तो वह रेणु को छोड कर उससे अलग हो जाता है। रेणु अपनी पुत्री को अपनी किसी मित्र के यहाँ रहने को भेज देती है और धीरे-धीरे स्वयं रतन नाम के व्यक्ति से प्रेम करने लगती है, रतन उसे बहुत

पसन्द है। किन्तु रतन चाहता है, कि उन दोनों के जीवन में तभी शान्ति होगी जब वह उसकी बेटी को रास्ते से हटा देगी अर्थात् मार डालेगी। रेणु इसी ऊहापोह में अटकी है, उसकी समझ में नहीं आ रहा है, कि वह क्या करें। क्या वह रतन का साथ पाने के लिए अपनी ही बेटी की आहुति दे देगी? यह सब विचार उसके अर्न्तमन में मानसिक विद्रोह की स्थिति पैदा कर देते हैं। एक उदाहरण में रतन रेणु से कुछ इस प्रकार कह रहा है –

> **"नियम?" रतन एकदम पलटकर देखने लगा था मेरी ओर, "युद्ध तो एक अलौकिक आदेश है ? प्रकृति का आदेश है कि हम युद्ध करें , एक–दूसरे को खत्म करें। 'हम' याने कौन ?' हम 'याने केवल मनुष्य नहीं। 'हम' याने 'हम सब '? पशु–पक्षी, कीडे–मकोडे–सब ? सब एक–दूसरे को खत्म करें – यहीं प्रकृति का आदेश है। इसी उपाय से प्रकृति घटिया जीवों को समाप्त करके; केवल बेहतर जीवों को सामने रखना चाहती है।"** *(समर्पण , पृ. १०)*

इस प्रसंग में रतन के विचार साधारण जनता के विचारों से अलग दिखाई पड रहे हैं। वह कहता है, कि युद्ध करना तो भगवान का आदेश होता है। हमारी प्रकृति में एक जीवन को मारकर ही दूसरा जीवन जिन्दा रह सकता है। हमें भी एक दूसरे को खत्म करना चाहिए, जो की हमारी राह में रोडा बनने का प्रयास करे, हमें उसे मार डालना चाहिए। हम मनुष्य और कीडे–मकोडें सब एक ही प्रकृति के हैं, हमें घटिया जीवों को मारकर बेहतर जीवों की स्थापना करनी चाहिए। उसकी नजर में बेबी घटिया जीव है और हमें उसे रास्ते से हटा कर मार देना चाहिए । रतन आगे कहता है –

> **"केवल इतना नहीं। अर्थ और आगे, और गहरा है। किसी की भी जान निकाल कर हम साबित करते हैं कि हम प्रकृति के अन्दर घुसे हुए हैं, कि हम प्रकृतिमय हैं । हत्या सचमुच एक अलौकिक कार्य है। शेर जब भूखा नहीं होता तब भी केवल आनन्द के लिए हिरण मारता है, क्योंकि शेर प्रकृति के नियमों के अनुसार चलता है । हिरण एक घटिया, कमजोर प्राणी है। शेर बेहतर और शक्तिशाली प्राणी, प्रकृति चाहती है कि बेहतर प्राणी घटिया प्राणियों को खत्म कर दे। जैसा प्रकृति चाहती हैं, वैसा न करना एक अपराध है।"***(समर्पण , पृ. ११)*

रतन स्वयं को शेर से और बेबी को हिरण की उपमा देकर रेणु को समझाने का प्रयत्न करता है। वह किसी की भी जान लेने में स्वयं को प्रकृति के अन्दर होना मानता है। उसके अनुसार तभी हम प्रकृतिमय और उसके अन्दर घुसे हुये प्रतीत होगें, जब हम किसी की जान ले लेगें। हत्या करना एक बडा ही आनन्द देने वाला काम है। यह हमारे मन को प्रसन्नता का आभाष कराता है। रतन ने एक उदाहरण के तौर पर रेणु को समझाना चाहा और कहाँ कि शेर को जब भुख भी नहीं होती है, फिर भी वह हिरण को मार डालता है, आखिर वह उसे भुख के लिए नहीं बल्कि अपने आनन्द के लिए मारता है। उसें ऐसा करने में सुख की अनुभूति होती है। रतन के अनुसार शेर सही करता है और वह स्वयं भी एक शेर है और बेबी को मरवा कर सही काम कर रहा है। उसके अनुसार शेर एक अच्छा और शक्तिशाली जीव है और हिरण कमजोर और बिना काम का प्राणी है। हमारी प्रकृति यही चाहती है, कि अच्छे प्राणी घटिया प्राणियों को खत्म कर दे और जैसा प्रकृति चाहती है, वैसा अगर नहीं करते हैं, तो हम प्रकृति के सबसे बडे अपराधी माने जायेगें। रतन की मानसिक सोच कुछ अलग है, वह स्वयं इस संसार में बिना किसी कष्ट के जीना चाहता है, जो भी उसके जीवन के बाधा बने उसे वह मार डालना चाहता है। अत: *'समर्पण'*उपन्यास में हमें रेणु के माध्यम से मानसिक विद्रोह दिखाई पडता है।

'गंगा प्रसाद विमल' के उपन्यास *'कहीं कुछ और'* (१९७१), *'मरीचिका'* (१९७३), *'मृगान्तक'* (१९७८) आदि उपन्यासों में मानसिक विद्रोह का चित्रण किया है। 'विमल' के उपन्यास में मानसिक विद्रोह का इन्तजार या फिर प्रतीक्षा का भाव है। इसमें जो प्राणी हमेशा इन्तजार करते रहते हैं और मन ही मन आने वाले प्राणी की राह देखते हैं। विमल के इस इन्तजार को गहराई और विश्वसनियता के साथ प्रस्तुत किया है। इसकी प्रमुख पात्र एक माँ है। इसमें माँ का चरित्र कठिन और आग सा है। साथ ही विरोधाभाष में हमेशा डूबी हुई सी रहती है। स्वयं को हमेंशा धोखा देते रहना, झूठी आशाओं में डूबे रहना और दूसरों को भी मृग मरीचिका में भटकाना ही उसके चरित्र में मानसिक विद्रोह पैदा करता है। इस उपन्यास का परिवेश एक ग्राम के परिवेश से सम्बन्ध रखता है। गाँव की एक माँ निरन्तर विद्रोह से ग्रसित दिखाई पडती है। *'मरीचिका'* और*'मृगान्तक'* दोनों ही उपन्यास प्रतीक शैली में लिखे गये उपन्यास है। *'मरीचिका'*में प्रमुख तीन पात्रों के इर्द–गिर्द कहानी घूमती है। जिसमें कफ्फू, सन्त भजन सिंह और नरेटर में आदि है। ये तीनों ही संघर्ष, बलिदान और साहस जैसे जीवन के मूल्यों और आजादी के पश्चात् उत्पन्न हुये सभी तरफ भ्रष्टाचार और इससे टकराती नवयुवक पीढीं के

प्रतीक हैं। *'मृगान्तक'* में प्रतीकों के द्वारा आधुनिक समाज में फैले हुए हिंसा, आतंक, अनिश्चितता एकाकीपन आदि का चित्रण मानसिक विद्रोह के द्वारा दिखाई पडता है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त लेखिका, 'अमृता प्रीतम' के उपन्यास *'कोरे कागज़'* सन् १९८२ में प्रकाशित हुआ। 'अमृता प्रीतम' के इस लघु उपन्यास में एक युवा मन की कातरता और बैचेनी मानसिक विद्रोह के द्वारा उभर कर आती है। इसका प्रमुख पात्र पंकज चोबीस वर्ष का है। पंकज को सब पता चलता है, कि उसकी माँ जो उसका आज तक पालन-पोषण करती आई है, वह उसको जन्म देने वाली माँ नहीं है, यह पता चलते ही वह अपनी असली माँ और पिता को ढूँढने की तडप, बैचेनी उसे दीवानगी की हदों तक ले जाती है। वह स्वयं की पहचान को अजनबी सा महसूस करने लगता है। उसे लगता है, कि वह नाजायज बेटा है, उसकी माँ एक कुँवारी माँ थी। वह उसकी नाजायज औलाद है, बस यहीं सब मन में बार-बार, सोच-विचार करते हुए विद्रोह की स्थिति सी बन जाती है। पंकज को पालने पोषने वाली माँ जब मृत्यु को प्राप्त होने लगती है, उससे पहले वह पंकज को सब कुछ बता देती है, जो उसके जीवन से सम्बन्ध रखता है। यह सब सुनकर पंकज सन्न रह जाता है, उसे पहले तो समझ नहीं आता की वह करें, फिर उसे लगता है, कि उसे अपनी असली माँ को खोजना चाहिए। फिर वह बैचेनी से इस काम में लग जाता है। यहाँ एक स्थान पर निधि महाराज और पंकज के बीच उसकी माँ को लेकर बातें चल रही है। पंकज कहता है, कि उसे जन्म देने वाली माँ ही उसकी असली माँ क्यों नहीं हो सकती।

> **" पर अर्न्तआत्मा उसी ने बनायी थी। उसी ने यह अक्षर सिखाया। मेंरे लिए वह पूर्ण सत्य थी। पर आज किसी ने उस पूर्ण सत्य को झूठ क्यों कहना चाहा ?"**
>
> **"पीरों फकीरों ने जिस्म को खुदा का हुजरा कहा है, आत्मा की कोठरी। तुम बताओं। महान् कोठरी होती है कि आत्मा ?"** *(कोरे कागज़, पृ. १०)*

इस पर पंकज कहता है, की मेरी इसी माँ ने मुझे अक्षर का ज्ञान दिया है और यही मेंरे लीए सम्पूर्ण सच्चाई है। पर आज मैं उसका जन्म लेने वाला पुत्र नहीं हूँ, यह सच्चाई मेंरे उस पूर्ण सत्य को क्यो झूठला रहीं है, कि मैं उन्हीं का पुत्र हुँ। निधि महाराज पंकज के इस प्रश्न पर उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं, कि जो बडे-बडे साधु महात्मा होते हैं, उनके जिस्म को हुजरा कहा जाता है। आत्मा की कोठरी का नाम दिया गया है, यह तुम निर्णय लो, कि आत्मा महान्

होती है, या फिर कोठरी महान् होती है। पंकज के हिसाब से कोठरी महान् होती है। इस पर निधि महाराज उसे कहते हैं, कि :–

> **"पुत्र तन की कोठरी से भी जन्म ले सकता है, आत्मा से भी। पर यह दुनिया कोठरी को मान्यता देती है, आत्मा को नहीं। भूल जाती है, कि कोठरी आत्मा के कारण महान् होती है।"** *(कोरे कागज़, पृ. १०)*

अर्थात् एक पुत्र कोठरी और आत्मा दोनों से जन्म ले सकता है। पंकज ने अपनी माँ की आत्मा से जन्म लिया है। किन्तु ये दुनिया आत्मा की नहीं, कोठरी की भाषा ही समझती है। यह समाज यह नहीं समझता की जब तक आत्मा नहीं होगी, तो कोठरी कैसे महान् हो सकती है। अर्थात् जब तक प्यार–दुलार व अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं होगी एक शिशु अच्छा नौजवान नहीं बन सकता है। कोठरी से उत्पन्न शिशु को सींचने की आवश्यकता होती। अत: इस तरह निधि महाराज पंकज की मानसिक बैचेनी को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। पंकज अपने प्रश्नों का उत्तर पाने हेतू हमेशा अशान्त सा रहने लगता है। निधि महाराज फिर उसे बतलाते हैं, कि इन्सान के छ: प्रकार के घर होते हैं, पहला घर वह होता है, जहाँ उसका जन्म होता है, दूसरा घर वह होता है, जहाँ उसका पालन–पोषण किया जाता है, दूध की कटोरी के साथ और रोटी के साथ। उस समय उसकी यही दो मुख्य जरूरते होती है। इसके पश्चात् वह बडा हो जाता है और तीसरा घर बहन भाइयों का और छोटे दोस्तों का होता है। चौथा घर माँ का होता है। रक्षा करने वाली माँ का, इसीलिए उसे सुखी–स्थान कहते हैं। पाँचवा विद्या का होता है, साथ ही प्रेम का भी होता है। छठा घर उसका इस अंजान दुनिया से संघर्ष कर अपनी स्थिति बनाये रखने का होता है। इसी मानसिक विद्रोह के साथ पंकज जीता रहता है।

परम्परागत उपन्यास मनुष्य को उसके समस्त रूप को उसके बाहरी और आन्तरिक व्यापारों के साथ पेश करता है। आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिक आविष्कारों ने यह सोच पैदा कर दी, कि मनुष्य का बाहरी जीवन ना के बराबर तथा आन्तरिक जीवन ही प्रमुख है। इसी सोच का उपन्यासों पर बहुत बडा प्रभाव पडा। पश्चिम में इस नयी सोच से प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे जाने लगे। हिन्दी उपन्यास में भी 'अज्ञेय', 'इलाचन्द्र जोशी' आदि उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया। धीरे–धीरे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ऐसे उपन्यास लिखे जाने लगे जिनमें संवेदना और चिन्तन की प्रमुखता थी। इनके

उपन्यासों में घटनाएँ भी संवेदनाओं का रूप ग्रहण करने लगी। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास की मानसिक विद्रोह की यात्रा आरम्भ हुई। इस उपन्यासकारों में 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय', 'प्रभाकर माचवे', 'निर्मल वर्मा', 'लक्ष्मीकान्त वर्मा' आदि प्रमुख है। 'जैनेन्द्र' के उपन्यासों में वैचारिक ऊहापोह की ही प्रधानता है। 'जैनेन्द्र' अपने उपन्यासों में राजनीतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक सवालों का ही समाधान खोजने का प्रयत्न करते रहते हैं। उपन्यास के सभी पात्र मानसि विचारों की उठा–पठक में लीन है।

३.२.६ नारी विद्रोह

यह एक बडा ही रोचक तथ्य है, कि हिन्दी उपन्यास की शुरूआत स्त्री–विमर्श से ही हुई तथा आज के पश्चात् और पूर्व के उपन्यासों में किसानों के पश्चात् स्त्री विद्रोह को ही प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। इसका प्रमुख कारण यह भी हो सकता है, कि उपन्यासकारों में नवजागरण की चेतना उमड पडी थी, वे उससे अच्छी तरह प्रभावित हो गए थे। उस समय के पुरूष उपन्यासकारों ने परम्परागत नारी संहिता के द्वारा नारी के उद्धार की बात कहीं है। स्त्री के लिए उस दौर से बाहर निकलने का कोई भी रास्ता नहीं था। पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में नारी की हालत में काफी बदलाव आ गया। इस दशक में नारी शिक्षा के प्रति अभूतपूर्व जागरूकता उत्पन्न हुई। 'हिन्दू कोड बिल' नामक कानून सरकार द्वारा पारित करने के बाद भारतीय स्त्री को सदियों से चले आ रहे अनेक सामाजिक, आर्थिक और नैतिक पक्षों से मुक्त कर दिया। इस बिल की अभिव्यक्ति आर्थिक ,सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में हुई। इस शंखवाद के पश्चात् शनैः–शनैः न केवल स्त्री के प्रति पुरूष की सोच और मानसिकता में बदलाव आया, बल्कि स्त्री भी अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग होने लगी। बीसवीं सदी के अन्त में स्त्री अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी। वह इक्कीसवीं शताब्दीं के शुरूआत में और जोर पकडने लगा। 'यशपाल', 'नागार्जुन', 'भैरव प्रसाद गुप्त', 'रेणु', 'अमृतलाल नागर', 'राजेन्द्र यादव' आदि अनेक उपन्यासकारों ने नारी की व्यथा को लेकर उपन्यासों की रचना की। इनके उपन्यासों में विधवाओं, बूढों के साथ विवाह–बन्धन में बाँधी जाने वाली कन्याओं को भी उपन्यास का कथ्य विषय बनाया गया है। सामन्ती व्यवस्था के बीच में पल रही स्त्री की नियति तथा सभी वर्गो में समान रूप से नारकीय जीवन से गुजरती स्त्री की भाग्यगाथा पेश की गई है। कहीं पर अन्धविश्वास के कारण किसी स्त्री को डायन घोषित कर दिया जाता है और फिर उसे जीने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में नारी की विवशता, घुटन, कुंठा उत्पीडन के विषय को लेकर अनेक उपन्यास लिखे जाने लगे। इस दशक में स्त्री के शोषण और दलित स्त्री की नाटकीय जिन्दगी का भी चित्रण मिलता है।

'नरेश मेहता' ने अपने उपन्यास *'उत्तरकथा'* (१९७९) में नारी विमर्श को दिखाया है। इसमें सरो और दुर्गा दो ऐसी स्त्रियों की कहानी है, जिनका जीवन संघर्षपूर्ण तरीके से मध्यवर्गीय परिवारों में घुट–घुट कर व्यतीत हो रहा था। भारतीय स्त्री के पारिवारिक शोषण, अत्याचार और

पीडा का झकझोंरने वाला चित्रण नरेश मेहता ने अपने इस उपन्यास में किया है। इसमें परिवर्तन की झलक भी दिखाई पडती है। भारतीय स्त्री के चरित्र में जो भी बदलाव आ रहा था, उसकी झलक सरो और दुर्गा के चरित्रों में हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है। जीवनरूपी इस संघर्ष में सरो थक कर हार जाती है, तो दूसरी तरफ दुर्गा इस संघर्ष मे हार नहीं मान कर विश्वास धेर्य, सहनशीलता तथा चट्टानों जैसी दृढता की सजीव मूर्ति के रूप में सामने आती है। 'शैलेश मटियानी' ने भी अपने उपन्यासों में स्त्री विद्रोह को प्रमुख रूप से दर्शाया है। अपने उपन्यासों में पहाड़ी अँचल की नारी की पीडा और दुख को बहुत ही मार्मिक तरीके से अंकन किया गया है। स्त्री की देह का शोषण केवल उसका पति ही नहीं करता, बल्कि धर्म और सुरक्षा के ठेकेदार और असामाजिक तत्व भी करते हैं। 'पंकज बिष्ट' के उपन्यास *'उस चिडियाँ का नाम'* (१९८९) में पहाडी क्षेत्र की स्त्रियों की दयामयी स्थिति और पुरूष समाज द्वारा किए गए उनके शोषण का अंकन किया गया है। अपनी मुक्ति के लिये स्त्रियाँ परिस्थितियों से संघर्ष करती रहती है, उनका जीवन बडे ही दुख के साथ व्यतीत होता है। ऐसी स्थिति में भी उसकी जीवन शक्ति और अपने लक्ष्य पर पहुँचने की जिद आज भी उभरती नारी शक्ति का परिचायक है।

नारी की शिक्षा के प्रसार और पढी-लिखी स्त्रियों के स्वावलम्बी होने की प्रक्रिया के साथ-साथ उनके जीवन में अनेक नयी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई। इसके पहले लडकियों की शादी की कोई तकलीफ नहीं थी, जैसे तैसे माता-पिता उनका विवाह कर ही देते थे, चाहे उसके पश्चात् उनके भाग्य में जो भी लिखा हो। पर शिक्षा और नौकरी मिलने पर लडकियाँ काफी समय तक कुवारीं रहने लगी और उनकी उम्र भी अधिक होने लग गई। ऐसी स्थिति में समाज के संस्कार, जाति-धर्म से सम्बन्ध रखने वाली उल्टी मान्यतायें, तिलक-दहेज का बढता चलन लडकियों के विवाह में दीवार बनने लगा। 'शैलेश मटियानी' के उपन्यास *'गोपुली गफूरन'* (१९८१) में गोपुली ने रूप में स्त्री का जो रूप पेश किया है, वह महिला उपन्यासकारों के लिए भी एक चुनौती है। नारी की कभी न खत्म होने वाली चाहत, आत्मविश्वास, संघर्ष की आश्चर्यजनक क्षमता का प्रतीक है, गोपुली। वह नारी की कमजोरी का भी प्रतीक है और उसकी दृढता सहनशक्ति और ममता भी गोपुली में प्रयाप्त मात्रा में दिखाई देती है। स्त्री की प्रमुख कमजोरी यह है, कि वह पुरूष के सामने आत्मसर्मपण कर देती है, उसकी कमजोरी यह है, कि वह अपने गर्भ पर अभिमान नहीं कर पाती। अगर परम्परागत नारी संहिता के विरूद्ध वह गर्भ धारण करती है, तो वह उसके लिए एक अभिशाप बन जाता है। पुरूष के समाज द्वारा लादे गए

नियमों से वह अकेले लड नहीं पाती। गोपुली अपने सुझाव और आत्मविश्वास से भरे चरित्र के बावजूद पुरूष समाज द्वारा प्रताडित होती है। इतना होने के बाद भी वह हार कदापि नहीं मानती। गोपुली एक अविस्मरणीय पात्र है। दलित समाज की नारी होने पर भी उसके चरित्र में जो तेजस्विता है, वह देखने लायक है, अनूठी है, उसमें कोई कुंठा नहीं, हारने का भाव नहीं, वह डरती नहीं है, न ही हारती है, न खरीदी–बेची जा सकती है। उसकी ऊपर से दिखाई पडने वाली हार में भी उसकी जीत दिखाई पडती है, उसकी पराजय में ही उसकी विजय का शंखनाद सुनाई पडता है। उसके चरित्र में एक आदिम स्त्री और माँ पूरी तरह से विद्यमान है। उसका विद्रोह नारी विद्रोह के रूप में देखा जा सकता है। अतः इस प्रकार 'शैलेश जी' ने नारी विद्रोह को भरपूर मात्रा में दिखाने का प्रयास किया है। *'गोपुली गफूरन'* उपन्यास में गोपुली पात्र के माध्यम से उन्होंने नारी विद्रोह को दिखाया है। 'मटियानी' जी प्रमुख तौर पर नारी और दलित विमर्श के उपन्यासकार है। उनके उपन्यासों का परिवेश भले ही आँचलिक हो, किन्तु उस परिवेश में पुरूष सत्ता प्रधान समाज में नारकीय दुख सहन करती और उससे लगातार लडती नारी की कहानी प्रस्तुत हुई है। पुरूष प्रधान समाज में स्त्री को हमेशा दुख ही मिला है, वह हमेंशा पुरूषों द्वारा प्रताडित की गई है। 'मटियानी जी' के उपन्यासों में स्त्री–पात्र जुझारू दिखाई पडती है। हमेंशा तकलीफों व समाज के ठेकेदारों से विद्रोह करती हुई दिखती है।

'ऊषा प्रियंवदा' के उपन्यास *'शेष यात्रा'* का प्रकाशन १९८४ ई. में हुआ। इस उपन्यास में 'ऊषा जी' ने अमरीकी परिवेश में रहने वाली भारतीय स्त्री की नियति, उसके साहस और विवेक का अंकन किया है। यह नारी आधुनिक भारतीय स्त्री की तस्वीर है, जो कठिन और विपरीत परिस्थितियों में भी अपने लिए नयी और उचित राह चुन पाने में समर्थ हुई है। उस स्त्री को जितनी भी कठिनाईयों ने आकर घेरा हो, लेकिन वह निडरतापूर्वक साहस के साथ उसका सामना करती रहीं। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र अनु है, जिसके बाहरी और आन्तरिक संघर्ष को गहरी आत्मीयता और संवेदनशीलता के साथ अंकित करने में 'ऊषा जी' ने प्रर्याप्त सफलता हासिल की है।

'चन्द्रकिरण सौनरेक्सा' के दूसरे उपन्यास *'वंचिता'* १९७२ ई. में प्रकाशित हुआ। 'सौनरेक्सा जी' हिन्दी की पहली उपन्यास लेखिका हैं, जिन्होंने मध्यवर्गीय परिवेश में आधुनिक शिक्षा प्राप्त करती लडकियों के विवाह, पारिवारिक जीवन में तालमेल और जीविकोपार्जन की समस्याओं का अंकन किया है। उपन्यासकार ने स्त्री विषय को लेकर इस उपन्यास की रचना की

है। समाज की बनायी गयी रूढियों से ग्रस्त मध्यवर्गीय परिवारों की धुँआती, छटपटाती जिन्दगी का यथार्थ अंकन वंचिता में हुआ है। घुटनभरी जिन्दगी के अलग होने, स्त्री विषयक परम्परागत जड मूल्यों को नकारने और तोंडने की विद्रोहपूर्ण इच्छा ही, उपन्यास के शिक्षित नारी पात्रों में व्यक्त हुई है। इसमें मध्यवर्ग की आर्थिक रूप से असहाय विधवा के जीवन का भी मार्मिक अंकन है। मध्यवर्गीय परिवारों में विधवाओं की आर्थिक रूप से किसी और पर बोझ बने रहना, उसकी परवसता का दुख का मार्मिक अंकन 'सौनरेक्सा' ने इस उपन्यास में किया है। इसके साथ ही न सहन करने वाली स्थितियों से, एक नारी के संघर्ष और उसके मध्यवर्गीय मानसिकता से अलग होकर शारीरिक मेंहनत के मूल्य को स्वीकारने के साहस का अंकन किया गया है। एक मुसलमान पात्र की शुद्ध मानवीय संवेदना का इस उपन्यास में मार्मिक चित्रण मिलता है। मध्यवर्ग के पाखंड, ढोंग, मिथ्याचार, झूठे बडप्पन बोध, झूठा प्रतिष्ठा भाव आदि के अंकन में 'सौनरेक्सा' को अदभुत् सफलता मिली है।

उच्चतर शिक्षा ने नारी को स्वावलम्बी ही नहीं बनाया, बल्कि उन्हें अपनी अस्मिता और अधिकारों के प्रति जागरूत भी बनाया। उनमें परम्परागत नारी संहिता और संस्कारों के प्रति विद्रोह का भाव उत्पन्न हुआ। इसके चलते स्त्री भटकाव का शिकार भी हुई। धीरे-धीरे ऐसी स्त्रियों का चित्रण उपन्यासकारों द्वारा किया जाने लगा, जो शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने पर भी पुरूष की संस्कारजन्य कुंठाओं की शिकार होती है। पुरूष उसे अपनी वस्तु समझता है और उसके चरित्र पर शक करना तथा उसे शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताडित करना अपना अधिकार समझता है। यह नारी-शिक्षा के विकास और संस्कारमय मूल्यों के संघर्ष का अनिवार्य अर्थात् उचित परिणाम था। 'राजेन्द्र यादव' के लगभग सभी उपन्यासों में प्रेमी-प्रेमिका बगैर विवाह सम्बन्ध में बंधे एक साथ रहने का निश्चय करते हैं। कुछ स्त्रीयाँ परम्परागत भारतीय पत्नी की भूमिका ईमानदारी के साथ निभाने पर भी पति का प्रेम और सम्मान नहीं प्राप्त कर पाती है। साथ ही पति की प्रताडना और अन्त में परित्यक्ता का जीवन बीताने को बाध्य हो जाती है।

'मृदुला गर्ग' के लगभग सभी उपन्यासों में आधुनिक स्त्री की कठिन मानसिकता और अस्मिता का संघर्ष देखा जा सकता है। *'उसके हिस्से की धूप'* (१९७५) में एक आधुनिक नारी के प्रेम का त्रिकोणात्मक संघर्ष बिल्कुल नये रूप में परम्परागत मूल्यों और भावुकता की मानसिकता को नकारते हुए प्रस्तुत किया गया है। परम्परागत विवाह की एकरसता पति की

अध्याय - तृतीय

उसके प्रति उदासीन भाव तथा इन्हीं स्थितियों से ऊब कर भावुकता के प्रवाह में, प्रेम और विवाह के नये सम्बन्ध स्थापित करना और उससे भी ऊब कर प्रथम पति की ओर आकृष्ट होना आधुनिक नारी की ही समस्या दिखाई गई है। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र मनीषा के मनोभावों, अर्न्त:द्वन्द्वों, सोचों का वर्णन इस उपन्यास का प्रमुख विषय है।

'चितकोबरा' (१९७९) में एक संवेदनशील लेखिका के नीरस, प्रेरणारहित, ऊब भरी, पति और बच्चों वाली दुनिया में एक व्यक्ति के आगमन के फलस्वरूप उत्पन्न आवेगात्मक और विद्रोहात्मक तूफान का चित्रण किया है। दोहरी जिन्दगी के तनाव आधुनिक स्त्री के विखंडित व्यक्तित्व, तन-मन के द्वन्द्व आदि को उपन्यास में दर्शाया गया है। आधुनिक स्त्री के विद्रोह का भी वर्णन देखने को मिलता है।

'गोविन्द मिश्र' ने *'तुम्हारी रोशनी'* (१९८५) में स्त्री की अस्मिता से जुडे सवालों को गहरी संवेदनशीलता और तर्क के साथ पेश किया है। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र सुवर्णा के लिए जीवन खुशी का पर्याय है, जिसे पाने के लिए वह परम्परागत दाम्पत्य संहिता की परवाह भी नहीं करती है। स्त्री जाने अनजाने में अगर परम्परागत मूल्यों को नकारती है, तो उसे समाज का कोपभाजन बनना पडता है। स्त्री को अपने भोग की वस्तु समझने वाला पुरूष इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाता है, कि विवाह के पूर्व कोई दूसरा उसकी पत्नी का दोस्त बना हो। तुम्हारी रोशनी में दफ्तरशाही समाज का अत्यन्त प्रमाणीक चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस समाज में विकसित होने वाले स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का अनुभूतिपूर्ण अंकन है। सुवर्णा को एक ऐसे व्यक्ति की तलाश है, जिसके साथ वह जीवन के हर आयाम को जी सकें। अपने पति में उसे वह व्यक्ति नहीं मिलता है। अत: वह अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों में अपना सुख तलाशने का प्रयास करती है। दीपक, सोम, श्याम, अरविन्द और विशेष रूप से अनन्त के रूप में उसे सुख की प्राप्ति होती है। पर अनन्त को छोडकर उसका कोई भी मित्र भावनात्मक रूप से उसका सहयात्री नहीं बन पाता। वह एक तरफ अपने पति और बच्चों को भरपूर प्यार देती है, पर दूसरी तरफ परम्परागत नारी संहिता की उपेक्षा करती हुई अपने दोस्तों के साथ घूमती है। उसे विश्वास है, कि उसका पति रमेश उसे समझता है और शुरू में हम रमेश को इस स्थिति से अलग रहते हुए भी देखते हैं। पर कुछ दिन बाद उसका परम्परागत पति-बोध विद्रोह कर उठता है और वह अपने उन सारे अधिकारों का उपयोग करता है, जो भारतीय पति को परम्परा से प्राप्त है। स्वयं को इस स्थिति में पाकर सुवर्णा को और पढनें वाले को भी इस बात का अहसास होता है, कि

स्त्री के लिए परम्परागत नारी संहिता का उल्लंघन करना सम्भव नहीं है। पर सुवर्णा इस स्थिति का विद्रोह करती है और अपने लिए नया जीवन साथी चुनने का साहस दिखाती है। इससे उपन्यासकार के आधुनिक नारी की अस्मिता और मुक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण का पता चलता है।

'मंजुल भगत' के उपन्यास *'अनारो'* (१९७७), *'बेगाने घर में'* (१९७८) का विषय नया सा प्रतीत होता है। इन उपन्यासों में शहरी निम्नवर्ग के जीवन का चित्रण किया गया है। *'अनारो'* में महानगर दिल्ली में मध्यवर्गीय परिवारों में चौका-बर्तन कर गुजर बसर करने वाली स्त्रियों का चित्रण किया गया है। यह चित्रण बहुत स्वाभाविक और संवेदना सम्पन्न है। *'अनारो'* निम्नवर्गीय स्त्री के शोषण, तथा साथ ही उसकी जानने की इच्छा और स्वाभिमान से युक्त पात्र है। गंजी अनारो के विषय का ही विस्तृत रूप मात्र है। गंजी अनारो की बेटी है, जो अपनी मेहनत, विवेक और लगन से अपने नये जीवन का निर्माण करती है। गंजी के चरित्र द्वारा लेखिका ने इस वर्ग के प्रति अपने सहानुभूतिपूर्ण विश्वास का इजहार किया है।

'दिनेशनन्दिनी डालमिया' के उपन्यासों में अधिकतर मारवाडी समाज की नारी की पीडा की कथा कहीं है, जो वस्तुतः समस्त नारी समाज की कथा है। इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी के हर रूप-रंग को उसकी माँ, पत्नी, बहू, देवरानी, सास, ननद आदि की भूमिकाओं को देखा परखा है। उन्होंने *'आहों की बैसाखियाँ'* (१९७८), *'कन्दील का धुआँ'* (१९८०), *'आँख मिचौली'* (१९९१) आदि उपन्यासों में रूढ नैतिक मूल्यों, पारिवारिक षड्यन्त्रों, पुरूषों की तानाशाहियों को सहन करती औरत के दुख और तनाव को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। 'डालमिया जी' के उपन्यास की स्त्रियाँ जीवन की जटिलताओं के साथ जीती हुई, अनेक यातनाएँ सहती हुई भी समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं के बाहर नहीं जाती है। नयी पीढी की स्त्रियाँ संयुक्त परिवार के दम घुटने वाले वातावरण से स्वतन्त्र होना चाहती है, पर स्वयं कुछ करने या अपने पैरो पर खडा होने की ताकत उनमें नहीं है। लेखिका पुरूष की तानाशाही, मानसिकता का विरोध करती है। इनकी स्त्री पात्र अपने पारिवारिक परिवेश में घुटती-छटपटाती हुई विवाह, सम्पत्ति और पुरूषवादी वर्चस्व के खिलाफ विद्रोह की चेतना तक पहुँचती है, इनकी स्त्री पात्र अब तक दुख व पीडा को झेलती हुई अन्त में जाकर विद्रोह करने लगती है। किन्तु उनके इस स्त्री विद्रोह को पुरूष अपनी दम्भी मानसिकता की वजह से उन्हें दबाने का पूरा प्रयत्न करते हैं। कुछ तो चुप होकर बैठ जाती हैं, तो कुछ अपने विद्रोह को जारी रखती है।

शनैः-शनैः सविधान में भी स्त्री को अगर उसका वैवाहिक जीवन अच्छे से नहीं चल पा रहा है, तो सम्बन्ध विच्छेद का अधिकार प्राप्त हो गया। तलाक का अधिकार तो प्राप्त हो गया, किन्तु इसके साथ ही अनेक प्रकार की समस्याएँ भी उत्पन्न हुई। इन समस्याओं का अंकन महिला उपन्यासकारों ने संवेदनशीलता के साथ किया है। 'मन्नू भंडारी' ने *'आपका बंटी'* (१९७१) उपन्यास में तलाकशुदा पति-पत्नी और उनकी सन्तान को मध्य में रखकर आधुनिक नारी की कठीनाईयों से भरे जीवन का अंकन किया है। वैवाहिक सम्बन्ध का अलग होना और नये सिरे से नये सम्बन्ध बनाकर जीवन जीने का काम आधुनिक जीवन की एक महत्वपूर्ण सच्चाई है। जीवन की कठिनाईयाँ जब चुनौतियाँ लेकर सामने आती है, तो स्थिति में कोई संवेदनशील शिशु आकर खडा हो जाता है। 'मन्नू भंडारी' ने इस उपन्यास मे इस जटिल स्थिति को गहरी संवेदनशीलता और तीखेपन के साथ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'सूर्यबाला' ने *'यामिनी कथा'* (१९९१) में पुर्नविवाह और सन्तान की समस्या को एक-दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस उपन्यास में एक विभक्त माँ और विभक्त पत्नी के मानसिक तनाव का वर्णन किया है। इसमें स्त्री को अनेक यातनाओं से गुजरना पडता है। वह अपने वर्तमान पति और पहले के पूर्व पति से पैदा हुई सन्तान के प्रति तनाव सहन करती स्त्री का काफी झकझोंरने वाला चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'राजी सेठ' नामक उपन्यासकार ने पुर्नविवाह जैसी समस्या को लेकर उपन्यास *'तत्सम'* (१९८३) की रचना की है। इसमें पुर्नविवाह की समस्या के एक दूसरे पक्ष का चित्रण किया गया है। एक पढी लिखी, युवा और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी स्त्री की नये सिरे से जीवन जीने की समस्या को गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। अब स्त्री के लिए, पति की मौत हो जाने पर, पुनः शादी करना कोई कठिन समस्या नहीं है। पर एक संवेदनशील स्त्री के लिए दूसरा विवाह करना या फिर दूसरे पति का चुनाव का प्रश्न भी भारतीय संस्कारों की सोच में कम कठिन नही है। 'राजी सेठ' उपन्यासकार ने इस समस्या को मनोवैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आज की स्त्री पढी-लिखी और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी समाज द्वारा बनाये गये रूढिवादी संस्कारों से ग्रस्त परिवार, तिलक-दहेज की प्रथा, अपने स्वाभिमान और परिवार की स्वयं अपने सर उठाई गई जिम्मेंदारीयों के चलते बडी उम्र तक बिना शादी करें अविवाहित रह जाती है। उस स्त्री के सामने भी अपने जीवन को व्यवस्थित करने की समस्या है, जो वह

हल करने का प्रयत्न करती है और उन जटिल समस्याओं को हल करते हुये उसे अनेक दुख देने वाली स्थितियों से गुजरना पडता है। वह समाज के प्रति जब विद्रोह करती है, तो अनेक कठिनाईयाँ उसे आकर घेर लेती है, किन्तु वह तटस्थ, स्थिर वही खडी रहती है और अन्ततः उसकी विजय होती है। 'नासिरा शर्मा' के उपन्यास *'शाल्मली'* (१९८७) में भी आधुनिक परिस्थितियों में पति-पत्नी की समस्या को एक नये तरीके से उभारने का प्रयत्न किया गया है। परम्परागत हिन्दू समाज में पत्नी का पति से अलग कोई व्यक्ति नहीं होता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक समझे जाते हैं। सभी संविधान के अधिकारों के बावजूद भारतीय स्त्री चाहे वह पढी-लिखी और उच्च पद पर कार्य क्यों न करती हो, पारिवारिक और समाजिक लोगो के शोषण का शिकार बनी हुई है। कुछ पति आज भी अपनी पत्नी को अपनी चीज समझते हैं और पत्नी पति की बात मानना अपना धर्म समझती है। वैवाहिक जीवन का तालमेल जब बिगडता है, जब स्त्री अपने पति की तुलना में अधिक या बराबरी के योग्य और आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाती है। 'नासिरा शर्मा' ने इन्हीं परिस्थितियों में शाल्मली और नरेश के दाम्पत्य जीवन की कडवाहट और घुटन का नरेश की गन्दी मानसिकता और हरकतों का अंकन इस उपन्यास में किया है। अगर एक स्त्री के सामने उसके चरित्र पर उसका पति शक करने लगे तो ऐसी परिस्थिती में एक स्त्री क्या करें? वह अपने संवैधानिक अधिकारों का उपयोग करते हुए पति से छुटकारा प्राप्त करने या फिर धैर्य और विवेक के साथ अपने अधिकारों की सुरक्षा करते हुए परिवार को बिखरने से बचाने के लिए संघर्ष करे, 'नासिरा जी' दूसरे विकल्प का पक्ष लेती है। शाल्मली का चरित्र इसी विकल्प से ओत प्रोत है।

'पंकज बिष्ट' के उपन्यास *'उस चिडियाँ का नाम'* १९८९ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी नारी विद्रोह की झलक स्पष्ट तौर पर दिखाई पडती है। इसमें पहाडों में गुजर-बसर करने वाली औरतो का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पहाडी स्त्रियों की दयनीय स्थिति, पुरूष समाज द्वारा उनके शोषण, उनकी करूण मृत्यु आदि का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। पहाडी क्षेत्र की आर्थिक स्थिति और उसके वहाँ से शनैः-शनैः शहरों की और पलायन करने का चित्रण भी मिलता है। इसमें एक अध्यापक पिता के कठिन व्यक्तित्व का चित्रण प्रमुख है। पिता स्वयं ही खुद को सजा देने वाले अपराधी के रूप में दिखाई देते हैं। बसन्ती, बियोनी, सरूली, पार्वती आदि पहाडी स्त्रियों के यातना से भरे अनुभवों का शसक्त अंकन हुआ है। हरीक पात्र की माँ उसके पिता की उपेक्षाओं का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। वह अपने

पिता से नफरत करने लगता है। पिता की मौत पर उसे अफसोस नहीं होता बल्कि वह अपनी माँ को चिडियाँ में खोजता रहता है। अत: ऐसी ही पीडा पहाडी अनेक स्त्रियों के साथ होती है जिनका वह अन्तत: विद्रोह करने लगती है।

समाज कोई भी हो, स्त्री पुरूष के शोषण और दमन से मुक्त नहीं है। 'मेंहरून्निसा परवेज' के भी अधिकतर उपन्यासों में पुरूष द्वारा स्त्री को मानसिक और शारीरिक शोषण को विषय बनाया गया है। 'विवेकी राय' के उपन्यास *'समर शेष है'* (१९८८) में भी एक पात्र जयन्ती के रूप में एक ऐसी पढी–लिखी लडकी का चरित्र प्रस्तुत किया है, जो सामाजिक व परम्परागत, रूढिगत, मान्यताओं को नकारती हुई कुवारी सौभाग्यवती बने रहने का विकल्प चुनती है। सालों से चले आ रहे पिछडें, दबे और अपनी स्वयं की शक्ति से अपरिचित किसानों, मजदूरों और स्त्रियों में इस सामाजिक व्यवस्था से लडने की शक्ति पैदा करती है। वह परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए बनाये गये बन्धनों को तोडती है, तथा साथ ही साथ उस शोषण के विरूद्ध तनकर खडी हो जाती है, जो आज के भ्रष्टाचार में लिप्त नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों और गाँव वालों पर कहर के रूप में बरपा जाता है। इसका केन्द्रीय विषय ग्रामीण परिवेश में उभरती नयी नारी चेतना है। स्त्रियाँ न केवल पुरूषों के अत्याचार का विद्रोह करती है, वरन् नारी संहिता की समस्त मान्यताओं को अस्वीकार करती हुई अपने प्रेमी से विवाह सम्बन्ध स्थापित करती है।

'प्रभा खेतान' का नाम भी नारी विद्रोह की दृष्टि से शीर्ष पर है। उनके उपन्यास *'आओ पेपे घर चले'* १९९० ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की एक पात्र आईनिल के अनुसार औरत की जिन्दगी में हमेंशा हर वक्त 'रोना ही रहता है' कहा है। उसके अनुसार एक औरत जितना अधिक रोती है, वह उतनी ही प्रखर औरत बन जाती है। सदियों से स्त्री, पुरूष समाज के शोषण और दमन का शिकार रही है। 'प्रभा खेतान' को उसका यह रूप और उसका निरन्तर औरत होते जाना बर्दाश्त नहीं है। 'प्रभा खेतान' ने नारी की पीडा का चित्रण एक अमरीकी औरत के जीवन के सच के रूप में किया है। आधुनिक युग में स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण में बदलाव तो अवश्य आया है। स्त्री स्वयं अपनी लडाई लडना चाहती है, पर अभी यह जागरूकता और संघर्ष अपने प्रथम दौर में ही है और कुल मिलाकर आज की स्त्री भोगने योग्य वस्तु रह जाती है। फिर भी आज की नारी अपना अधीकार हासिल करने के लिए संघर्ष कर रही है। यह एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो एक रूढिवादी समाज से टकराकर अपने को भावात्मक

स्तर पर लहूलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करती है। 'प्रभा जी' का मानना है, कि विवाह, पति और बच्चें से अलग भी औरत का अपना एक अस्तित्व होता है। औरत का जीवन सिर्फ पुरूष की तलाश मात्र ही नहीं है, बल्कि उसकी अपनी भी सार्थकता है, जिसे वह जीना चाहती है। अतः हमें 'प्रभा जी' के उपन्यासों में स्त्री-विद्रोह की भावना स्पष्ट तौर पर दिखाई पडती है।

'प्रतापचन्द्र जी' का उपन्यास *'कठपुतली'* १९७९ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी औरत को कठपुतली की तरह पुरूष समाज नचाना चाहता है, किन्तु उसे इस चीज का कतई भान नहीं होता, कि एक स्त्री जितनी तेजी और व्यग्रता से किसी से प्रेम कर सकती है, तो उतनी ही तीव्रता से वह घृणा भी कर सकती है। उसकी घृणा का कारण मानसिक, सामाजिक या भौतिक कोई भी हो सकता है। इस उपन्यास में स्त्री के इसी हृद्‌य को छू लेने वाले पक्ष का चित्रण किया गया है। *'कठपुतली'* उपन्यास में कठपुतलियों का नाच दिखाने वाले मोहन मास्टर, उनकी पत्नी टगर और क्लेरियनेट-वादक शरत फुलूटी पात्रों को बडी ही संवेदनशीलता के साथ उभारा है। एक उदाहरण में निशि बुआ मोहन मास्टर की पत्नी के घर छोंड जाने पर कुछ इस प्रकार कह रहीं है:-

> **"बस, बस, अब में समझ गई। जरूर वह उसी शरत्फुलुट के साथ भाग गई होगी। जब है -तब इतना घुल मिलकर बातें करना फिर भला कोई बच सकता है? घी और आग, मिलें और लपटें ले-लेकर न जलें, भला ऐसा भी कभी हो सकता है? मोहन मास्टर तो बस, पुतलियाँ नचाना ही जानता है, घर की पुतली कहाँ किसके साथ नाच रही है, इस बात का उसे होश ही नहीं? इधर उसी का नौकर, हां-हां, नौकर तो, है ही वह, महावारी तनखा लेता है, तो नौकर नहीं तो और क्या है? सो वह उसकी बहू को ले भागा और मोहन मास्टर कठपुतलियाँ नचाता फिर रहा है? अब ले ले मजा?"** *(कठपुतली, पृ. ६)*

यहाँ पर निशि बुआ तुरन्त किसी भी तरह की राय स्वयं अपने मन से ही बना लेती है। वह स्वयं भी एक औरत होते हुये, दूसरी औरत पर बिना सोचे समझें कीचड उछाल रही हैं, किसी चाय की दूकान के लडके सिद्धू ने उसे कह दिया, कि मैंने अपनी आँखों के सामने टैक्सी में सारा सामान लादे मास्टर की बहू शरत्फुलुट के साथ शहर की तरफ जाते हुए देखा था, बस

बुआ को तो मौका मिल गया नीचा दिखाने का और वहीं उसने किया। अत: यहाँ पर स्त्री विद्रोह जोरों पर दिखाई पडता है।

अत: इस प्रकार से आजादी के बाद के हिन्दी उपन्यासों में स्त्री के तीन रूप दिखाई पडते हैं। अपने पहले रूप में वह सदियों से चले आ रहे शोषण व्यवस्था के अत्याचार की शिकार है। दूसरे रूप में आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने, परम्परागत नारी संहिता का विरोध करने और राजनीतिक दृष्टि से सबलीकरण की दिशा में अग्रसर होने के लिए संघर्षरत है। तीसरे रूप में वह नयी समस्याओं से जूझ रही है।

३.२.७ ऐतिहासिक विद्रोह

इतिहास में शुरूआत से ही विद्रोह होते हुए आए हैं। 'अमृत लाल नागर' ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में सर्वप्रथम स्थान रखते हैं। उनके अधिक्तर सभी उपन्यासों में ऐतिहासिक विद्रोह की झलक दिखाई पडती है। अत: 'नागरजी' की प्रमुख पहचान एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में भी है। अपने प्रथम उपन्यास *'शतरंज के मोंहरे'* से लेकर *'खंजन-नयन'* तक 'नागर जी' ने ऐतिहासिक उपन्यास को नये आयामों से युक्त किया है। नवाबी सामन्तवाद की ऐतिहासिक सच्चाई का अंकन किया है। नवाबी शासन को निरन्तर पतन की खाई में गिरते हुये और फिर अँग्रेजों के मुँह में प्रवेश करने का चित्र बडा ही मार्मिक है। उनके उपन्यास *'एकदा नैमिषारण्ये'* (१९७२) उपन्यास में भारतीय या हिन्दू संस्कृति के निर्माण का ऐतिहासिक रूप से आयोजन किया गया है, जो 'नागर जी' के अनुसार नैमिष आन्दोलन की देन है। इस नैमिष आन्दोलन के द्वारा पुर्नजन्म, कर्मकांडवाद, उपासनावाद, जानमार्ग आदि का अन्तिम रूप से मिलन हुआ है। इस मिलन के मूल में राष्ट्र की एकता का भाव दिखाई पडता था। ब्राह्मण और श्रमकण संस्कृतियों का संघर्ष उस काल की राष्ट्रीय समस्या थी, जिसके कारण देश में अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो रही थी। ब्राह्मणों के ही एक वर्ग ने श्रमण संस्कृति को वैदिक परम्परा से जोडकर एक मिली-जुली संस्कृति का रूप दिया, जो आज हिन्दू संस्कृति के नाम से जानी जाती है। 'नागर जी' ने इसी सांस्कृतिक विषय को इस उपन्यास का आधार बनाया है। इस सांस्कृतिक पुर्नजागरण के उत्पन्नकर्ता के रूप में भार्गव, सोमाहुति जैसे महर्षि नेता की कल्पना कर और उसे उपन्यास का केन्द्रीय पात्र बनाकर उपन्यासकार 'नागर जी' ने अपने उपन्यास को सजीव बना दिया। पौराणिक पात्रों को कथा संसार में यथार्थ मनुष्यों के रूप में प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार ने उन्हें ऐसी संकटपूर्ण स्थितियों से गुजारा है, जहा मानव का सच्चाई भरा रूप अपनी सभी गरिमा और कोमलता में प्रकट हुआ है। नारद मुनि का तुलसी वृन्दाओं के मकडीनुमा जाल में फँसना, सोमाहुति भार्गव की अनुपस्थिति में उसके घर पर मृगुवत्स के राक्षसों का आक्रमण, लखनऊ में लक्ष्मण जन्मोत्सव का मेला और भार्गव सोमाहुति के द्वारा भारत की नाग पत्नी प्रज्ञा की रक्षा आदि अनेक प्रसंग इस उपन्यास में दिखाई पडते हैं। 'नागर जी' के ऐतिहासिक उपन्यास तो बहुतेरे हैं, किन्तु उनमें सबसे ऊँचा स्थान *'मानस के हंस'* (१९७२) उपन्यास का है। इस उपन्यास में गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी और व्यक्तित्व को आधार बनाकर उपन्यास को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर 'नागर जी' हिन्दी उपन्यास साहित्य में विशिष्ट स्थान के अधिकारी

बन गये हैं। यह उपन्यास लिखना कठिन इसलिए था, कि एक ओर तो गोस्वामीजी की कोई प्रमाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं है, तो दूसरी तरफ उनके जैसे भक्त और महाकवि से तालमेल बनाना, उनके शरीर में प्रवेश कर उनकी आत्मा की ऊँचाई से बोलना किसी साधारण काम से कम नहीं था। उपन्यास में तुलसी के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक का जो जीवन-चित्रण प्रस्तुत हुआ है, वह इतना सजीव, तर्क संगत है, कि वह पूर्णत: यथार्थ बन गया है। इस जीवन चरित में मोहिनी प्रसंग विवादास्पद होते हुये भी तुलसी के चरित्र को बहुत ऊँचाई पर पहुँचा देता है। मोहिनी प्रसंग *'मानस का हंस'* उपन्यास का एक अत्यन्त मार्मिक प्रसंग है, जिसमें तुलसी का अपनी ही कमजोरियों से संघर्ष उनके चरित्र को उदात्त और मार्मिक बनाता है। तुलसी के भक्त रूप को प्रतिष्ठित करने के लिए उपन्यासकार ने उनकी भक्ति भावना और भक्तिविरोधी सभी तत्वों जिसमें काम, अर्थ ,यश ,मोह के बीच संघर्ष और उन सभी पर भक्ति की विजय का अंकन हुआ है। तुलसी का कवि भी रामभक्ति के प्रति ही समर्पित है, और वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए हमेशा संघर्ष करते रहने पर भी अन्त में अपने को राम भक्ति में ही लीन कर देता है। *'मानस का हंस'* उपन्यास तुलसीदास की कल्पित, किन्तु सच्चाई से युक्त जीवनी ही नहीं अपने समय का सांस्कृतिक इतिहास का विद्रोह भी है। कट्टर ब्राह्मणवादी व्यवस्था से तुलसी का विद्रोह का संघर्ष अभी भी संस्कृति परिवेश के द्वन्द्वात्मक रूप को सामने लाता है। सामाजिक विडम्बनाओं के विरूद्ध तुलसी का व्यक्तिगत रूप से विरोध तथा विदेशी शासन के अत्याचारों का सामना करने के लिए जनता को सक्षम और बलशाली बनाने की तुलसीदास जी की योजना उपन्यासकार की बहुत बडी उपलब्धि है।

'खंजन नयन', 'मानस का हंस' की ही परम्परा का महाकवि सूरदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। सूरदास के भक्त और कवि के व्यक्तित्व को प्रमुख रूप से ऊपर लाना ही उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य है। जब समस्त परिस्थितियाँ हमारे विरोध में होते हुये जन्म से अन्धे बालक सूर के चरित्र का अंकन बखूबी किया है। यह संघर्ष सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक स्तर पर उसके जीवन भर चलता रहता है, जिसकी आग में तप कर सूर परम भक्त कवि सूरदास बनते हैं। सूर ने अनेक कठिनाईयों से संघर्ष कर और अनेक विपरीत परिस्थितियों से विद्रोह भरा संघर्ष करके महानता हासिल की है।

'सन्हैयालाल ओझा' के उपन्यास *'सर्वनाम'* (१९७०) और *'सम्भवामि'* (१९८३) दोनों ही उल्लेखनीय है। यह उपन्यास बंगाल में जन्में नक्सलवादी आन्दोलन और पुरातनकाल में

आर्यो-अनार्यो के इतिहास पर आधारित उपन्यास है। *'सम्भवामि'* उपन्यास में 'ओझा जी' ने देव सभ्यता का तर्कयुक्त विश्लेषण करते हुए उसमें लोकतान्त्रिक, समाजवादी और आधुनिक मानवीय दृष्टि से सम्पन्न समाज की कल्पना की है। एक ऐसा समाज बनाना चाहा है, जिसमें सभी गुण मौजूद हो। उपन्यास की कथा तीन भागों में बनाई गई है; पहले स्तर पर देवताओं और असुर देवों के संघर्ष की कहानी दिखाई पडती है, दूसरे स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध की कहानी और तीसरे स्तर पर लेखक बनाम अंधेरे की कथा है। जिसके अन्दर से किरचियों की पुरानी कहानी फूटती है। इस उपन्यास में इन्द्र को फाँसीवाद के प्रमुख प्रतिनिधि के स्वरूप में और सैन्धव पणिकों के महान नायक बृबु को धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विश्वयुद्ध की कहानी में हमें इतिहास में होने वाले विद्रोह का स्वर सुनाई पडता है। 'सन्हैयालाल ओझा' के अन्य उपन्यास *'प्रथमं शैलपुत्री'* व *'मन्त्रपुत्र'* (१९९०) में भारतीय इतिहास और संस्कृति के आदि रूप को पहचानने का प्रयत्न किया है। *'प्रथम शैलपुत्रीा'* में ई.पू. हजारों वर्ष के काल की अविध में भारत में मनुष्य के विकास की कहानी प्रस्तुत की गई है। *'मन्त्रपुत्र'* में ऋग्वैदिक काल में हुए आर्य-अनार्य विद्रोह; उनके सांस्कृतिक मेलझोल और आर्यावर्त के जन्म की कहानी प्रस्तुत की गई है। इनमें से पहले का आधार नृतत्वशास्त्र के सिद्धान्त, दूसरे का आधार हडप्पा और मोंहनजोंदडों की पुरानी खुदाईयों से मिले निष्कर्ष तथा तीसरे का आधार उपनिषदों से लेकर महाभारत तक का साहित्य है। उपन्यासकार ने इन सभी सामग्री को लेकर उसी के आधार पर एक पर्याप्त विश्वसनीय और मार्मिक कथा संसार का निर्माण किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों का लिखना हिन्दी में 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' के आने से पहले ही प्रारम्भ हो चुका था और उनके आगमन के समय ऐतिहासिक उपन्यासों का दौर जारी था। अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ-साथ 'द्विवेदी जी' ने अपनी रचनाओं के द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास को एक नयी ऊँचाई पर पहुँचा दिया। 'द्विवेदी जी' के पहले के उपन्यासकार और समकालीन उपन्यासकारों में 'वृन्दावन लाल वर्मा' के उपन्यासों में इतिहास-बोध, राष्ट्र के प्रति उत्पन्न प्रेम, अपनी पुरानी संस्कृति के प्रति आकर्षण और क्षेत्रीय चेतना थी, पर इतिहास की समस्त घटनाओं, विवरणों और ऐतिहासिक नायकों के प्रति लगाव भी उनमें काफी मात्रा में था, जिस मोह और प्रेम के चलते उनके उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास अधिक हो गये हैं। 'द्विवेदी जी' ने इतिहास को अपनी कथाओं मे काफी महत्व दिया है। उनके तीन उपन्यास ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से सम्बद्ध होने की दृष्टि से गुप्त काल के प्रारम्भ हर्षवर्धन काल और दिल्ली

शासन के आरम्भिक दौर से जुडे हुए हैं। *'पुनर्नवा'* (१९७३) में समुद्र गुप्त के समय की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना को वैज्ञानिक इतिहास बोध के साथ प्रस्तुत किया गया है। *'पुनर्नवा'* उपन्यास का कथा विषय लोरिक-चन्दा की प्रसिद्ध लोकगाथा, शुद्रक कृत मृच्छकटिक की कथा और कालिदास की लोगों से सुनी हुई जीवनी साहित्य से निर्मित है। कथा में कहीं-कहीं गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का प्रसंग आया है। समुद्रगुप्त जब मगध की गद्दी पर आसीन हुआ, उस समय का 'द्विवेदी जी' ने उसके अधिकतर युद्ध अभियानों के साथ-साथ उसके चरित्र की जो झांकी प्रस्तुत की है, वह ऐतिहासिक विद्रोह से सम्बन्ध रखती है। समुद्र गुप्त के समकालीन मथुरा के कुषाण राजा धर्मधोष तथा उज्जयिनी में शक शासक पालक का विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से 'द्विवेदी जी' के उपन्यास में दिखाई पडता है। उपन्यास में समुद्र गुप्त और उसके विजय के अभियानों और शासन की व्यवस्था तथा मथुरा और उज्जयिनी की राजनीतिक हलचलों को बखूबी स्थान मिला है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में काफी बल मानवीय सम्बन्धों से जुडी संवेदनाओं के आलोक में तथा उस काल की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण करना है। उपन्यास के लिए इन कहानियों को तलाश करना और उनका रचनात्मक उपयोग करके 'द्विवेदी जी' ने ऐतिहासिक विद्रोह का अद्भूत परिचय दिया है। उनके प्रमुख ऐतिहासिक पात्रों में देवरात, सुमेर काका, मंजुला, मृणालमजंरी, सिद्धाश्रम के सिंह बाबा समुद्रगुप्त, सेनापति भटार्क, हलदी का मन्त्री पुरन्दर, आचार्य पुरगोभिल आदि कल्पित पात्र भी उपन्यास में प्रस्तुत ऐतिहासिक व सांस्कृतिक यथार्थ को पेश करने में अद्भूत योगदान करते दिखाई देते हैं। *'पुनर्नवा'* भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग माने जाने वाले काल का चित्र प्रस्तुत करता है। इस समय हमारे देश में कोई भी राजनीति से सम्बन्धित संकट नहीं था। समुद्र गुप्त ने अपनी समस्त सैनिक क्षमता से समस्त राष्ट्र में राजनीतिक ठहराव और सन्तुलन कायम किया था। इसके साथ ही समाज में हो रही स्थिरता और तालमेल की इस समय बहुत जरूरत थी। यह काल आर्य और यवन संस्कृतियों के संगम का काल था। तकरीबन पाँच-छह शताब्दियों से अनेक प्रकार की विदेशी जातियाँ हमारे देश में आकर रह रहीं थी और उनके साथ ही उनके आचार-विचार, रीतिरिवाज, नैतिक सामाजिक मूल्य और उनकी मिली-जुली विचारधाराएँ भी भारतीय लोगों के जनजीवन में मिलजुल रही थी। भारतवासियों के जीवन मूल्य और संस्कृतियाँ यवनों के जीवन मूल्य और आचरणों से टकरा रही थी। ऐतिहासिक विद्रोह जैसी स्थिति वहाँ कायम हो चुकी थी। समाज में मजबूती और उसमें तालमेल हेतू इनमें सामंजस्य की स्थापना बहुत जरूरी हो गई थी, आपस में विद्रोह भी काफी मात्रा में हो रहा था। इस उपन्यास की पात्र

चन्द्रा गोपाल आर्यक नामक युवक से अत्यन्त प्रेम कर बैठती है, पर चन्द्रा के माता-पिता उसका यह प्रेम सम्बन्ध अस्वीकार कर देते हैं और उसका विवाह श्री चन्द्र नामक व्यक्ति से कर देते हैं। चन्द्रा इस वैवाहिक सम्बन्ध को नहीं मानती है और अन्त में समाज से विद्रोह कर गोपाल आर्यक को ही अपने पति के रूप में पा लेती है। स्त्री-पुरूष का यहीं प्रेम सम्बन्ध की समस्या आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है, आज भी इसकी प्रासंगिकता खत्म नहीं हुई है। चन्द्रा का गोपाल आर्यक के प्रति प्यार करना हमारी परम्परागत समाज की व्यवस्था के लिए बहुत बडी चुनौती है। समुद्रगुप्त परम्परागत सामाजिक संहिताओं का पक्ष धर है, इसलिए वह अपनी स्वयं की तरफ से तो गोपाल आर्यक को सजा देता है और खुद आर्यक भी स्वयं को प्रेम करने के कारण दोषी समझता है। पर चन्द्रा ऐसा हरगिज नहीं समझती वह समस्त समाज से विद्रोह करती है तथा स्वयं आर्यक की पत्नी बनकर मृणालमंजरी के साथ रहती है। इस प्रकार एक ऐतिहासिक प्रसंग के माध्यम सें 'द्विवेदी जी' ने आधुनिक समाज व्यवस्था के बदलाव का अद्भूत विजन प्रस्तुत किया है।

पुरातन भारतीय समाज अनेक प्रकार की रूढियों, अन्धविश्वासों, गलत मान्यताओं से ग्रस्त होकर क्षीणशक्ति हो रहा था। मन्त्र-तन्त्र, ग्रह-नक्षत्र और अनेक प्रकार की सिद्धियों में लोगों का विश्वास इतना बढ गया था, कि कर्म और धर्म की महिमा ही छुप सी गई थी। *'अनामनादास का पोथा'* (१९७६) औपनिषद् युग के परिवेश और उनके रहन-सहन पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रमुख सभी पात्र उपनिषदों से ही लिए गए है, जिनमें रेक्व, जाबाला, अरून्धती, भगवती, ऋजुका, जटिल मुनि, मामा आदि। इस उपन्यास में जानश्रुति नाम का राजा था तथा उसके आश्रम में अनेक तपस्वी और आचार्य का बसेरा था। इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र रैक्व का चरित्र कुछ अजीब अवश्य है, पर जिन समस्याँ भरी परिस्थितियों में उसका बचपन व्यतीत हुआ है, उसे देखते हुये ठीक है। महर्षि औषस्तिपाद, भगवती ऋतम्भरा, रैक्व आदि पात्रों के जो विचार व्यक्त कराये गये हैं, वे हमारे अनुभव क्षेत्र से जुडे हुए हैं। महर्षि औषस्तिपाद, रैक्व से कहते हैं, कि यह सारा संसार एक पुरूषोत्तम का स्वरूप है और यह जडों को धारण करने वाली वनस्पति जीवन्तजन्तु और बुद्धिमान मनुष्य उस की ही एक विभिन्न अभिव्यक्ति है और जो मनुष्य ऐसा समझकर सेवा करता है, उसमें कभी भी अहंकार नहीं होता है। जो आदमी अपनी सुविधा को ध्यान में न रखकर, दूसरों का कष्ट दूर करने की कोशिश करता है। वह दूसरों का दुख दूर करने हेतू अपने प्राण तक त्याग सकता है। वही धर्म से

ओतप्रोत है। अत: ये सभी मूल्य हमारी ऐतिहासिकता के समय से मेल खाते हैं। ऐतिहासिकता की सोच बहुत ही अच्छी थी, ऐसी स्थिति में भी वहाँ राजाओं के विद्रोह देखने को मिलते हैं, किन्तु युद्ध करना उनकी परम्परा थी। अत: 'द्विवेदी जी' के उपन्यासों में ऐतिहासिक विद्रोह का अंकन दिखाई पडता है।

१९८५ ई. में ही 'शरद पगारे' का *'गुलारा बेगम'* और उसके बाद में *'गन्धर्वसेन'* (१९८९) प्रकाशित हुए। *'गुलारा बेगम'* उपन्यास मुगलकालीन इतिहास पर तथा *'गन्धर्वसेन'* प्राचीन भारतीय इतिहास पर आधारित उपन्यास है। *'गुलारा बेगम'* उपन्यास में शाहजादा खुर्रम और गुलारा बेगम तथा बेगम जैनाबादी में औरंगजेब और हीराबाई की प्रेमकथाएँ मुगलकालीन विद्रोह प्रस्तुत किए गये हैं। इन दोनों उपन्यासों की स्त्रियाँ संवेदना से ओतप्रोत दिखाई पडती है। *'गन्धर्वसेन'* उपन्यास में भी उज्जयिनी नरेश गन्धर्वसेन की शौर्य और प्रेम से उत्पन्न विद्रोह से भरी कहानी प्रस्तुत की गई है। इन दोनों ही उपन्यासों में राजा लोग एक दूसरे के साथ अपने ही राजमहल के लोगों के साथ विद्रोह की मुद्रा में अधिक दिखाई पडते हैं। अत: इन उपन्यासों में ऐतिहासिक विद्रोह की झलक दिखाई पडती है।

इतिहास अतीत का वह अंश है, जो प्रमाण पर आश्रित होता है और अधिकतर लिखित स्थिति में पाया जाता है। इतिहास हमारी धरती के नीचे दबे नगरों और सभ्यताओं के अवशेषों के रूप में भी सुरक्षित है। आजादी के बाद कुछ उपन्यास ऐतिहासिकता को लेकर भी प्रकाशित हुए, उनमें 'कमलाकान्त त्रिपाठी' ने *'पाहीघर'* और 'कृष्णा सोबती' ने *'जिन्दगीनामा'* में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक का चित्रण किया है। *'पाहीघर'* उपन्यास की कहानी १८५७ ई. की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना से सम्बन्ध रखती है। अंग्रेज इतिहासकारों के जिसे सिपाही विद्रोह और आने वाले भारतीय इतिहासकारों ने प्रथम स्वाधीनता संग्राम के नाम से पुकारा है, इस त्रासरी भरे राष्ट्रीय अनुभव पर आधारित उपन्यास लिख कर 'कमलाकान्त त्रिपाठी' ने एक उल्लेखनीय पहल की है। उस समय के किसानों, विद्रोही सैनिकों, साधु-सन्तों, जमींदारों और अंगरेज अफसरों तथा उनके स्त्री-बच्चों के मानस से यह अनुभव जुडा हुआ है। उपन्यासकार 'त्रिपाठी जी' ने इस आन्दोलन के जनधर्मी पक्ष को अधिक उभारने का प्रयास किया है। समस्त घटना एक व्यापक जनविद्रोह के रूप मे पेश की गयी है। अवध की धरती की मिट्टी से लेखक का गहरा सम्बन्ध है, जो भावनात्मक तौर पर जुडा हुआ है। वहाँ के रहन-सहन के चित्रण, वहाँ के रीतिरिवाजों, सामाजिक सम्बन्धों में लेखक का भावनात्मक जुडाव पूर्णत: दिखाई पडता है। आशंका, भय,

आतंक, क्रोध, प्रतिशोध, विवशता आदि के कडे अनुभवों के साथ मानवीय संवेदना, सहानुभूति और प्रेम की संवेदना इस प्रकार सभी आपस में मिली हुई है, कि उनके मध्य में से होकर गुजरता हुआ पाठक अभिभूत हो जाता है। क्लारा का भारत के प्रति प्रेम और दुर्बली नामक सैनिक से उसके भावनात्मक लगाव का प्रसंग मार्मिकता की दृष्टि से बेजोंड है। महात्मा गाँधी और कॉग्रेस पार्टी के नेतृत्व में चल रही आजादी की लडाई में जानबूझकर ही किसानों को वह सक्रिय भूमिका नहीं दी गयी, जो सम्भवत: इस आजादी के आन्दोलन के स्वरूप को ही बदल देती। गाँवों में जमीदारों और किसानों का सीधा संघर्ष था, जिसमें अंग्रेजी सरकार पूरी तरह से जमींदारों के साथ थी। किसान नेता यह आस लगाए रहे, कि जमींदारों के विरूद्ध विद्रोह में गाँधी जी उनकी मदद करेंगे, परन्तु गाँधी जी किसानों को शान्ति और अहिंसा का पाठ पढाते रहे और जमींदार उनका शोषण करते रहें। अत: किसानों में विद्रोह भर गया और उन्होंने बडे शोषणकारी जमींदारों से संघर्ष करना शुरू कर दिया। 'कृष्णा सोबती' के *'जिन्दगीनामा'* उपन्यास में भी बीसवीं शताब्दी के प्रथम पन्द्रह सालों में पंजाब के किसानों–गाँववालों के जीवन का अंकन किया गया है। किसानों का महाजनों द्वारा शोषण और फिर ग्रामीणों द्वारा उनका विद्रोह करना ही प्रमुख है।

'भीष्म साहनी' ने अपने प्रमुख उपन्यास 'मय्यादास की माडी' (१९८८) में उस काल का चित्रण किया है, जब ब्रिटिश साम्राज्यशाही सिख अमलदारी को उखाडती हुई अपने पाँव फैला रही थी। 'साहनी जी' ने इस उपन्यास मे पंजाब के राजनीतिक सामाजिक सच्चाई और उसमें आए परिवर्तनों को प्रस्तुत किया है। सन् १८४८ ई. में पंजाब राज्य पर अंग्रेजों का शासन हुआ और उसके साथ ही पंजाब की धरती पर भी ईस्ट इंडिया कम्पनी की लूट–खसोट प्रारम्भ हो गयी। अंग्रेजों की अमलदारी शुरू होते ही पुराने जमींदारों के स्थान पर नये जमींदार आये जिन्होंने अंग्रेजी शासन के प्रति वफादारी दिखाकर नीचता और गुलामी की हद पार कर दी। उनका लक्ष्य एकमात्र अंग्रेजों से साथ मिलकर किसानों और मजदूरों का शोषण करना था। पर कुछ समय बाद ही ये जमींदार भी उखड गये और उनके बदले उनके स्थान पर महाजन और पूँजीपति शक्ति का केन्द्र बन गये।

भारत में अगर गहराई से अध्ययन करें, तो यह प्रतीत होता है, कि ब्रिटिश शासन इन्हीं सामन्तों, महाजनों और पूँजीपतियों के सहयोग से सफल रहा है। इसके पश्चात् नवयुवक पीढी के रूप में नयी शक्ति उत्पन्न हुई, जिसने इस शोषण के खिलाफ विद्रोह का नारा मुखरित किया। ग्यारवीं शताब्दी में भारत पर हुए तुर्की के आक्रमणों में देश को राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि

से झकझोर कर रख दिया था। यह एक बडा राजनीतिक विपत्ति का काल था, जिसका वर्णन ऐतिहासिक उपन्यासकारों द्वारा किया गया है। 'इकबाल बहादुर देवसरे' के उपन्यासों में भी ऐतिहासिक विद्रोह का अंकन हुआ है। उनके उपन्यास *'बेगम हजरत महल', 'नबाब बेमुल्क', 'तानसेन गुल्फाम मंजिल'* आदि।

आजादी के बाद के अनेक उपन्यासकारों ने प्रागैतिहासिक अतीत पर आधारित उपन्यास लिखे हैं। इनमें भी दो तरह के उपन्यास है, कुछ उपन्यास पुरातात्विक अवशेषों और अनुसन्धानों पर और कुछ वैदिक और पौराणिक साहित्य से प्राप्त कथाओं और विचारो पर आधारित है। प्रथम प्रकार के उपन्यासों में 'राजीव सक्सेना' कृत *'पणि पुत्री सोमा'* (१९७२), 'मायानन्द मिश्र' कृत *'प्रथमं शैलपुत्री'* व *'मन्त्रपुत्र'* (१९९०) आदि उल्लेखनीय है। 'सक्सेना जी' के उपन्यास *'पणिपुत्री सोमा'* में व्यक्त उत्तर-ऋग्वैदिक काल में आर्यो के एक कबीले ने पणि जाति को हराकर दृराद्वती नदी के के किनारे ऋषि सभ्यता की नींव डाली थी। यह संघर्ष केवल दो शक्तियों का ही विद्रोह नहीं था, बल्कि दो सभ्यताओं और संस्कृतियों का भी संघर्ष था। इस विद्रोह पर आर्यो का अधिकार तो हो गया, पर इसका आर्य संस्कृति के स्वरूप पर भी प्रभाव पडे बिना नहीं रह सका। उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य इस विद्रोहीजन्य तनाव का चित्रण करना है। अत: स्पष्ट तौर पर देखे तो 'राजीव सक्सेना' ने मार्क्सवादी दृष्टि से आर्य-अनार्य संघर्ष की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

'वीरेन्द्र कुमार जैन' का वृद्धाकार उपन्यास *'अनुत्तर योगी'* का पहला खंड १९७४ ई. और १९८१ ई. में चौथा खंड प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने वर्धमान महावीर के समस्त जीवन को उनके विचारों के साथ पेश करने का प्रयास किया है। भारत के इतिहास में वर्धमान महावीर का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक देन गौतम बुद्ध के समान ही महान् है। ऐसे युग के महान् व्यक्तित्व को उपन्यास का विषय बनाने का उपन्यासकार को पहला डर तो उसे मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करने का होता है। महान् व्यक्तियों के जीवन के साथ परम्परा से इतने चमत्कारिक तत्व मिल गये होते हैं, जिनका विवरण करना कठिन हो जाता है। 'वीरेन्द्र जी' ने महावीर के जीवन से जुडे परम्परागत चमत्कारिक तथ्यों के साथ उनका चरित्र प्रस्तुत करते हैं। वे पाठक के सामने अत्यधिक अतिमानवीय चरित्र के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने महावीर की विचारधारा को अधिक महत्व दिया है। महावीर को आज के जैन समाज की संकीर्णताओं से अलग रखा गया है। 'वीरेन्द्र कुमार जैन' के महावीर मानवीय वाणी

में ही वार्तालाप करते हैं, शास्त्रवाणी में नहीं करते। उपन्यासकार ने उसे व्यक्तिगत उपासना से ऊपर उठाकर उसकी अनन्त सम्भावनाओं को उजागर करने का प्रयास इस उपन्यास द्वारा किया है।

अतः इस प्रकार हमने ऐतिहासिक विद्रोह का अध्ययन किया।

३.२.८ आधुनिक विद्रोह

विद्रोह के हमने कई प्रकारों का अध्ययन किया, उनमें से आधुनिक विद्रोह भी प्रमुख विद्रोह में आता है। आधुनिक विद्रोह से आशय है, आज के युग का विद्रोह, नया विद्रोह। आधुनिक विद्रोह आजादी के पश्चात् कस्बों, शहरों और महानगरों में अधिक छा गया। भारतीय महानगरों में दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता जैसे शहर हिन्दी उपन्यास में प्रमुख रूप से उपस्थित है। 'गोविन्द मिश्र' के उपन्यास *'वह अपना चेहरा'* १९२० ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में वह शब्द कटा हुआ है और अपने चेहरे की तलाश के पहले मैं को एक मुखौटा चढाना पडता है। इस तलाश में आधुनिक विद्रोह का बोध उजागर होने लगता है। नगर में या महानगर में इन्सान मुखौटा पहनने के लिए विवश है। उपन्यासकार के अनुसार इन्सान कुछ भी नहीं रहा, केवल स्थितियाँ बनकर रह गया है, जो खास आकृति, खास रंग और खास क्षण में इसे दिखला जाते हैं। इस उपन्यास में दफ्तरी माहौल भी हैं, थोडा कम है, जिनमें इन्सान सिमटकर छोटा हो जा रहा है, आधा–अधूरा बन गया है। 'मैं' एक छोटा अफसर है, जिसकी छोटी नजर है। उसके जीवन की विडम्बना यह है, कि वह बडे अफसर से नफरत भी करता है, लेकिन अधिकतम वेतन पाने के लालच में उससे चिपका भी रहता है, ताकि वह कहीं नाराज न हो जाये। वह दूसरों के सामने अपना चेहरा कायम रखने के लिए मुखौटा चढा लेता है, लेकिन बडा साहब उसकी यह कमजोरी को पूरी तरह जानता है। मिसेज आजवनी अफसरों को हर–तरह से प्रसन्न रखती है, जो महानगरों में एक कला का रूप धारण कर रही है। एक बडे शहर में 'मैं' इतना छोटा था, कि एक भुनगा भी 'मैं' को बडा लगता था। 'मैं' एक गलत जगह पर था । 'मैं' को कभी आधेपन का बोध कचोटता है, तो कभी अजनबीपन का। यह कहानी इसी आधुनिक मानसिकता और संवेदना में आधुनिकता का विद्रोह का बोध उजागर हुआ है।

'प्रमोद सिन्हा' के उपन्यास *'उसका शहर'* १९७० ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास नाम और रूप दोनों स्तरों पर नगर बोध से अच्छी तरह जुडा हुआ है। इस उपन्यास में पात्र जिस वास्तव को झेंलते हैं, वह बाहरी कम और भीतरी अधिक है। इसमें कुछ पात्र ऐसे हैं, जिनमें बदलने की अधिक सम्भावना है। उनमें संस्कारों से छुटकारा पाने की अधिक क्षमता है, ताकि लेखक उपन्यास में आधुनिकता के उस पहलू और दौर का निरूपण कर सके जो पाश्चात्य धारणों के पास है। इन पात्रों में लूपिका, दशानन, श्री आमूल, नीरा, एग्नी आदि है जो

आधुनिकता का बोध कराते हैं। आज के इन्सान के लिए व्यतीत होने की संवेदना उसे सताती है। भूमिका सोचती है, यह जीना अपने आप में कितना डरावना हैं, कहीं कुछ भी लौटकर नहीं आता। बीत जाने का अहसास उस आत्महत्या की तरह है, जिसमें आदमी यह अच्छी तरह जानता है, कि यदि उसने ऐसा कुछ भी किया, तो उसका अस्तित्व खतरे में पड जायेगा और यह खतरा अन्य खतरों की तरह टाला नहीं जा सकता, बल्कि इससे उसके अस्तित्व का ही निशान मिट जायेगा। इस तरह की सोच की दृष्टि इस उपन्यास में मिलती है, जिस पर काम के अस्तित्ववादी की छाया मंडरा रही है। अमूल की समस्त शिकायत अपने भीतर स्थित खोखलेपन से होती है। वह एक चित्र बनाती है, यह चित्र एक बीमार शहर का है। इसी तरह प्रोफेसर दशानन भी खालीपन के बोध से घिरा हुआ है और इसे भरने के लिए वह छात्राओं को खाने पर बुलाकर फिर खाली हो जाता है। बोरियत का बोध सभी पात्रों के मन में समाया हुआ है। लूपिका के लिए श्री का अकेलापन एक चिन्ता का विषय है, जिसे झेलना है। हर चीज का एक उचित भुगतान तय है और किसी–न–किसी तरह से उसकी कीमत हमें चुकानी पडती है। न ही हम इस भुगतान की टकराहट से बच सकते हैं और न ही इससे पल्लू झाडा सा सकता है। इसका सामना तो डटकर ही करना होता है। एग्नी, श्री के साथ जब बाजार में चली जाती है, तो आमूल को पहली बार अपने ही घर में बेघर महसूस होने लगता है। इस तरह की स्थितियों से उपन्यास का प्रत्येक पात्र अजनबीपन, अकेलेपन से विद्रोह कर रहा है। लूपिका, आमूल को अपनी आदत का शिकार समझने लगती है, वह नहीं समझ पाती, कि आमूल माँ के रहते बदल–बदलकर औरतों के साथ क्यों रहना चाहता है। वह खोखले सम्बन्धों को अस्वीकार कर देती है। वह बँध जाने के बजाय सफर करते जीवन को अच्छा व बेहतर समझती है। लूपिका विवाह जैसे बन्धन को आवश्यक नहीं मानती। उसका अस्तित्व टुकडों में बँट गया है और एक–दूसरे के बीच उसे कोई नाता या फिर रिश्ता नजर नहीं आता। इस तरह से आमूल और लूपिका के सम्बन्धों में केवल दुविधा है। मित्र और एग्नी के सम्बन्धनों में बेगानेपन का बोध है, लूपिका और दशानन में इतनी भिन्नता है, कि वे जुड नहीं पाते। लूपिका अपनी अस्मिता खोना नहीं चाहती। उपन्यास का अन्त दशानन की स्थिति में होता है। 'प्रमोद सिन्हा' का उपन्यास उसका शहर वास्तव में जीवन के उस अंश को उजागर करता है, जिसका सामना आज के इन्सान को कदम–कदम पर करना पड रहा है। यह आधुनिक विद्रोह से उस पहलू को लिये हुए है, जिसका विरोध कला के मानवीकरण के पहलू से हो करता है।

'मणि मधुकर' का उपन्यास *'सफेद मेमने'* (१९७१) का परिवेश भी आधुनिकता भरे विद्रोह को दिखलाता है। यह महानगर न होकर रेगिस्तान है। इसमें नगर की भीड के बजाय रेगिस्तान का निर्जन और एकान्त है। इस एकान्त के अकेले, अजनबीपन और बेगानेपन का बोध अधिक है। इसमें कुछ पात्र मेमने, जो सफेद है, वे नगर-बोध को लिऐ हुए हैं, राजस्थान के एक छोंटे से गाँव नेगिया में रहता है, जिसका खालीपन पराया-पराया सा लगता है। 'मधुकर जी' का कवि गाँव के खालीपन को पकडने के लिए उपन्यास को नया मोड देता है। इस परिवेश के बियाबान के सायँ-सायँ में दमघोटू अकेलापन गहराने लगता है। रामौतार पोस्टमास्टर जानवरों का डाक्टर बन्ना जस्सू आदि में आधुनिकता का बोध कभी बेगानेपन में प्रतीत होता है, तो कभी अकेलेपन में, कभी जिन्दगी और मौत के चिन्तन में, तो कभी व्यर्थता के बोध में नेगिया गाँव मनहूस तो है, लेकिन शिवपालगंज की तरह यहाँ कीचड ही कीचड शायद नहीं है। नेगिया गाँव का परिवेश भी उसकी ही तरह मनहूस है, जिसमें इन्सान को साँस लेनी पड रही है। उपन्यास में बन्ना की दृष्टि में आधुनिक विद्रोह झलकता है। रामौतार और पोस्टमास्टर रेगिस्तान में अकेले है। सुरजा एक मेमने की तरह है, जिसे छीला जाता है। इस गाँव का डाकिया इसे नगर से जोडने वाली एक कडी है। बन्ना एक शील स्वभाव की स्त्री है और रामौतार ने तय कर लिया था, कि वह बन्ना का मौन नहीं तोडेगा, उसकी निष्क्रियता में खलल नहीं डालेगा। बन्ना को अफीम खाने की लत शायद इसलिए भी पड गई है, ताकि वह बोरियत से अस्थायी रूप से छुटकारा पा सकें। इसी तरह ठहराव की स्थिति को इस गाँव में मनहूस गाँव आंका गया है, जहाँ तीन या चार सालों में अन्तर नहीं पडता। यहाँ का हाल बदलने वाला नहीं है। रामौतार अपनी बोरियत काटने के लिए कभी गिलहरियों को दाना चुंगाते हैं, तो कभी हिरणों का शिकार करने के लिए चले जाते हैं। रक्खे डाकिया को यह लगता है, कि रेत के इन दूहों में रहने वाले सभी लोगों का जीवन बाँस की फटी खपचियों की तरह है, जो अन्दर-ही-अन्दर जल रहीं है और मोचंग मिलकर धुआँ दे रहे हैं। जस्सू डॉक्टर, पोस्टमास्टर, औ बन्ना सभी मोरचंग है और सभी एक-दूसरे को बजा रहे हैं, जो जितना तेज हलाल होता है वह उतना ही तेज बजता है।

'बदीउज्जमाँ' का उपन्यास *'एक चूहे की मौत'* १९९१ ई. में प्रकाशित हुआ। यह एक नये अन्दाज और मिजाज का उपन्यास है, जिसकी रचना हिन्दी उपन्यास में पहली बार देखने को मिली है। इस उपन्यास में बात जितनी सरल है, उतनी ही जटिल है। कहने का ढंग जितना सादा है, उतना ही पेचीदा है। नगर का वर्णन किया गया है, इसमें चूहाखाना है, जो एक पूरे तन्त्र को

प्रकाशित करने लगता है, यह इसकी विशेषता है। तन्त्र चूहों को खत्म करना नहीं चाहता। चूहों को खत्म करने का मतलब है, कि खुद उसका अस्तित्व भी बाकी नहीं रहेगा। तन्त्र की विशेषता ही यह है, कि यह निरन्तर चूहें पैदा करता रहता है और उन्हें मारता रहता है। इस उदाहरण के अनुसार हमारा समाज ही इस भ्रष्टाचारी व्यवस्था को खत्म नहीं करना चाहता है। इसमें दो चूहेमारों की मौत की कहानी है, जिनके अपने कोई नाम तक नहीं है। आज की स्थिति में इन्सान नामहीन होंने की गवाही देने लगा है, एक अक्षर या फिर नम्बर बनता जा रहा है। इसमें सिर्फ वर्ण से ही काम चलता है, वह चित्रकार ही है। दोनों बडे सरकारी दफ्तर में तीसरे दर्जे के चूहेमार है, यानी छोटे चूहेमार हैं। वह सचिवालय जिसे इस उपन्यास का आधार बनाया गया है, एक बडे तन्त्र या विद्वान का संकेत देता है, जिसमें इन्सान की हस्ती एक चूहेमार से अधिक नहीं है, जिसका काम चूहे मारने के सिवा कुछ भी नहीं है। यह तन्त्र बेमानी है, बेकार है, लेकिन इसके बिना हस्ती खतरे में पड सकती है। वह छोटा चूहेमार है, जो तीसरे दरजे से सम्बन्ध रखता है। वह रोटी कमाने के लिए चूहेखाने अर्थात् केन्द्रीय सचिवालय में चूहेमार का काम करता है अर्थात् फायलों का काम करना है। 'ग' भी इसके साथ ही काम करता है, लेकिन 'ग' को इस काम से नफरत है, फिर भी अपना और अपनी माँ का पेट भरने के लिए यह काम उसे करना पडता है। उसकी माँ जब मर जाती है, तो वह यह काम छोड देता है और चित्र बनाने का काम शुरू कर देता है, किन्तु उसके चित्र न तो रोटी कमाते हैं और न ही नाम कमाते हैं। इस दशा में वह गन्दी गली में रहने वाली सोनिया का आश्रय पाता है। लेकिन 'प' जो एक सफल चूहेमार है, साधारण चित्रकार भी है, 'ग' में इतनी जलन पैदा कर देता है, कि वह आत्मघात कर लेता है। आधुनिकता की चुनौती इन्सान को खुदकुशी करने के लिए मजबूर करती है। वह 'ग' की मौत की कथा है। वह चूहेमार की कथा थोडी बडी है। 'ग' की आत्महत्या का बहुत ही गहरा असर उस पर पडता है, कि वह काम करने के काबिल नहीं रहता। इसलिए उसका तबादला मुहाफिज़ खाने में कर दिया जाता है, जहाँ मारे गये चूहों को सुरक्षित रखा जाता है। उपन्यास के अन्त में देखता है, कि उसके बनाए चित्रों को 'प' अपने नाम से दिखा रहा है तो 'ग' उसे जलती हुई आग में फेंक देता है। इस घोर यातना में चूहे को महसूस होने लगता है, कि सदियों से सभी मैल उसके मन और शरीर से उतरती जा रही है। 'ग' एक पत्र लिखता है और उसमें कहता है, कि चूहेखाना सिर्फ वह नहीं है, जहाँ तुम काम करते हो या जहाँ मैं काम करता था। समस्त दुनिया ही एक बडा भ्रष्टतन्त्र है, जहाँ भ्रष्ट रहकर ही जीवन बसर किया जा सकता है। जो भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं हो, तो उसके लिए इस दुनिया में कोई सगा नहीं है। 'क', 'ख',

'ग' नामों से केवल आज के युग में नामहीनता को उजागर किया गया है, अतः एक चूहे की मौत उपन्यास में 'बदीउज्जमां जी' ने इस भ्रष्टतन्त्र के गन्दगीपन को चूहे के माध्यम से दिखाया है। यहाँ भ्रष्याचारी ही अच्छी तरह व जीवन -यापन कर सकता है। अगर कोई इस तन्त्र का विरोध करता है, तो उसे पद से निकाल दिया जाता है।

'कृष्ण बलदेव वैद' के दूसरे उपन्यास *'विमल जाएँ तो जाएँ कहाँ'* १९७४ ई. में आधुनिक विद्रोह देखने को मिलता है। इस उपन्यास के नायक पात्र का नाम विमल बिहारी, धाम धरा और काम कैं-कैं है। इस परिचय में इस आदमी का चेहरा उभरता है, जो आधुनिकता के उस पहलू से जुडा हुआ है, जो कला से जुडा हुआ है, जिसका विद्रोह तो किया जा सकता है, लेकिन जिससे मना नहीं किया जा सकता। इसकी कहानी में विमल उपन्यासकार बनने की सोचता रहा है, लेकिन उपन्यास अब एक विधवा के समान है, जो पूँजीवादी संस्कृति के मरने के साथ-साथ या मशीन युग के दनदनाने से मिटती हुई शिल्प-शाला है। उपन्यास का नायक पात्र देश और काल की सीमाओं से बाहर है, वह उनसे परे हैं। परम्परागत उपन्यास में पात्रों का चित्र उतारा जाता था, लेकिन इस परम्परागत रूढि का विरोध करने के लिए विमल का चित्र इस तरह खींचा गया है, चपटा चेहरा, चौकोर नाक, ठिगनी ठोंडी, दूधिया रंग, रीढ की हड्डी रबर की तरह। एक आँख उसकी मामी पर, और दूसरी आँख गौरी मौसी से मिलती है। उसकी मामी को द्रोपदी की उपमा दी गई है, क्योंकि उसका पति तो नेवी में कार्यरत है और विमल का उनके साथ स्नेहिल अनैतिक सम्बन्ध स्थापित है। किन्तु कुछ समय बाद वह स्वयं अपराध बोध से ग्रसित होने लगता है। आगे की कहानी उसकी भटकन को लिए हुए है। वह शहर की सडकों और गलियों की सैर को निकल पडता है। पान की दुकान और पीला पनवाडी के यहाँ जहाँ वह अक्सर जाया करता है। पनवाडी की दूकान में यह गाना बज रहा होता है, जायें तो जायें कहाँ? यह गाना विमल की स्थिति के अनुकूल सटीक बैठता है। यह उपन्यास की समूची संवेदना को बाँधता है। बँधी हुई नौकरी पर लँगडी लात मारकर विमल की जिन्दगी नया मोंड ले लेती है विपथ की खोज।

'महेन्द्र भल्ला' के उपन्यास *'दूसरी तरफ'* (१९७६), *'उडने से पेश्तर'* (१९८७) आदि उपन्यासों में आधुनिक युवा के विद्रोह का वर्णन किया है। इसमें अपनी जीविका की तलाश में जाने वाले भारतीय लोगों के साथ जिन्दगी ने भयावह अपमान भरा अन्याय का वर्णन किया है। नस्लवाद की भावना से ग्रस्त इग्लैंड की नयी पीढी भारतीयों के साथ जिस रूप में पेश आती

है। उसके व्यवहार में जो अमानवीय क्रूरता और वहशीपन होता है, उसे 'महेन्द्र भल्ला' ने सहज रूप से प्रस्तुत किया है।

'अभिमन्यु अनत' ने *'शबनम'* और 'रामदेव धुरन्धर' ने अपने उपन्यासों में आधुनिक विद्रोही की मार्मिक तस्वीर प्रस्तुत की है। 'अभिमन्यु' के अधिकतर उपन्यास मॉरिशस के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद की जीवन-स्थितियों पर आधारित है। 'अनत' के उपन्यास *'लाल पसीना'* (१९७३) तथा 'रामदेव धुरन्धर' के *'पूछो इस माटी से'* (१९८३) में उन्नीसवीं सदी के पूर्व में भारतीय मजदूरों के मॉरिशस पहुँचने और मॉरिशस के आजाद होने तक के संघर्ष का चित्रण मिलता है। 'प्रभा खेतान' के उपन्यास *'आओ पेपे घर चले'* (१९९०) में भी एक अमरीकी औरत जो आधुनिकता की दौड में अपने रिश्ते पिछे छोडती चली जा रही है, उसके जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करता है।

अतः हमने अनेक विद्रोह का अध्ययन किया, जिनमें से आधुनिकता की दौड में अपने व गैरों के साथ किया जाने वाले विद्रोह का भी हमने अध्ययन किया। अनेक उपन्यासकारों ने इस विषय को अपना कथ्य-विषय बनाया है, जिनका अध्ययन हम ऊपर कर चुके हैं। आजकल आधुनिकता की अन्धी दौड में हम अपने प्रमुख रिश्तों को पीछे छोंडते जा रहे हैं, जिन्हें समय चलते सम्भालना जरूरी है।